प्रकाशक

स्टडी सर्किल फैमिली प्रोजेक्ट,
हल्दियान का रास्ता,
जयपुर
( फोन नं. २६०६ )

मुद्रक
श्री वीर प्रेस
जयपुर

## समर्पण

पीड़ित मानव को

पी. एल. अजमेरा

# विषय-सूची

# प्रस्तावना

देशमें जिन भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें काम होरहा है उनमें साहित्य भी पीछे नहीं है। हमारी सामाजिक क्रांति अथवा विकासोन्मुख एकयताओं से साहित्य भी वंचित नहीं रहा है और उस पर भी जनता की आगे बढने की भूख का प्रभाव स्पष्ट होता जारहा है। इस भूखने जिस प्रकार अन्य क्षेत्रोंमें अपने रास्ते खोल लिए हैं उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्रमें भी। यही कारण है कि आज साहित्य की धाराओं के प्रवाहमें भी एक दूसरे ही प्रकार का रङ्ग हमें देखने को मिलने लगा है। वास्तव में साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है। हम उसके द्वारा देश के जन-जीवन में भली भांति झांक सकते हैं। इस दृष्टिसे साहित्य रचना के क्षेत्रमें आया हुआ यह परिवर्तन देशके लिए शुभ लक्षण माना जा सकता है।

वर्तमान समय हमारे देशके लिए महान् संक्रमण-काल है। अब युग-धर्म जन-जीवन को एक नया मोड़ देने जारहा है। मैंने इसे युगधर्म इसलिए कहा है क्योंकि यह परिवर्तन अटल है और इस प्रवाह को कोई शक्ति रोक नहीं सकती। साहित्य या संस्कृति में जब यह स्थिति आती है तो इस महान प्रवाह में बहुत सी अच्छाइयों के साथ असंख्य बुराइयां भी आगे पांव बढाती हैं एवं आगे बढने की इस तेजीमें सन्तुलन कायम रहना बहुत मुश्किल

होजाता है। कभी कभी तो यह सन्तुलन का अभाव यहां तक बढ जाता है कि स्रष्टा या लेखक अपने लक्ष्य तक को भूल जाता है। वह चलता हैं निर्माण का नाम लेकर और उसकी प्रक्रिया बुलाती है विध्वंस को। वह नारा लगाता है रचनात्मक सुझावों का और मार्ग अपनाता है आलोचना का। इस महान प्रवाह में वस्तुतः अच्छाई बुराई की परख भी एक समस्या होजाती है और साहित्य के इस झंझावत में बहुत सा साहित्य भी नीचे दबा जारहा है।

यह एक मेरा दृष्टिकोण मात्र है, जिस पर विचार करना साहित्यिकों एवं समालोचकों का कार्य है। वास्तव में निर्माण की इस वेलामें देशको ऐसे साहित्य की अपेक्षा है, जो लुढकते हुए पांवों को शक्ति, हिलते हुए सद्विचारों को दृढता एवं इनसे भी बढकर देशकी अखंडता तथा राष्ट्रीयताको जनता के अन्तस्तल तक पहुँचा सके। इसके साथ साथ आज हमें अपेक्षा है ऐसी पुस्तिकाओं की जो जनता की सामुदायिक विकास की भूख जगा सकें। यह काम वे लोग अधिक अच्छा कर सकते हैं जो इस क्षेत्रमें कुछ न कुछ काम कर रहे हैं।

यह हर्ष का विषय है कि श्री बी. एल. अजमेरा ने अपनी इसी प्रकार की अनुभूत कुछ समस्याओं को मार्मिक ढंगसे इस संकलन में गूंथने का प्रयास किया है। मैं इस प्रयास की पूर्ति के लिए उन्हें बधाई देता हूं।

१५ अगस्त १९६२ ]　　　　भगवतसिंह महता

# विराट के दर्शन

अपने ही मधुर एकान्त मे भटकते हुये मन पूछने लगा "अन्तर के स्वामी, कितनी दूर है वह वैभव की मजिल, कब तक इस उबड खाबड धरती पर ठोकर खा खाकर घायल होते रहना पडेगा ? क्यो नही अमृतमय सुखद क्षण लक्ष्य के तीर पर आकर रुक जाता है, क्यो यह निरन्तर का नृत्य चलता रहता है ?" किसी ने कहा, "ठहरो, अभी समय नही आया है। अभी मृगतृष्णा के रेगिस्थान को पार करना है, अभी सागर की हिलोरो मे गोता लगाना है, अभी ऊषा और संध्या के कपोलो पर लालिमा बिखेरनी है और अभी नयनो के जगमगाते दीप प्रज्वलित करने है।" अवश्य ही अभी पाप और पुन्य की वेदी पर संक्रमण काल की आहूती देना बाकी है। देव, अर्चना के वे त मय क्षण अभी मोह-कुंठित रूप-लावन्य की सरिता मे गुम हो गये हैं। अभी राग मे राग और रंग मे रग, अपनी सीमाओ मे जकडे पक्षी की भाति लवलीन मन विलास वैभव मे उछल कूद कर रहा है। किन्तु दूर, अन्तरिक्ष के उस पार अम्बर क्षितिज मे यह तुझे कौन देख रहा है ? चेतन जगत का स्वामी सूर्य अपनी सहस्रादि किरणो से रत्न जटित प्रकाश का प्रचड ताडव नृत्य किये, सनसनाटा हुआ ब्रह्माड की यात्रा पर निकल पडा है। तभी तो सहसा उत्तर मिला, "देखो अपनी आखे खोल कर इस सूर्य, महासूर्य, देवसूर्य मे" किन्तु फिर भी, अरे यह क्या, वह तो एक ही पथ का स्वामी, एक ही दिशा का यात्री और एक ही तप का तपस्वी, पूर्व और पश्चिम की सीमाओ मे जकडा एक ही लक्ष्य को भेद रहा है। वह अपनी सीमाओ मे सीमित, किन्तु फिर भी महानतम, अपने पथ की यात्रा मे निरन्तर निश्चल और निश्चितरूप से चलता जाता है।

मानव मति से यह सब देख कर नही रहा गया । वह सोच सोच कर पागल ही होती गई । क्यो ? सीमा मे असीम के दर्शन ? अवश्य ही, निरन्तर का नृत्य चल रहा है, अपनी सीमा मे असीमित होने के लिये, सीमाओ का पक्षी असीम के पिंजरे मे और पूर्व का सूर्य-पश्चिम के अस्ताचल की सीमा मे क्या असीमित नही है ?

प्रकृति के बन्धनो की सीमायें भी निरन्तर विकास की कल्पनाओ से ओतप्रोत सरितामय तन्मय वहती जा रही है । नदी अपने तटो मे सीमित है, किन्तु विराट के सागर के दर्शन करने के लिये पुष्प अपने रंगरूप और सौरभ मे सीमित है, मधुमक्खियो को आकर्षित करने और कलियो को मुरझा कर फल बनाने के लिये, और रजनि अपने अधकार मे सीमित है दिन की उजियाली लाने के लिये । इसी प्रकार समस्त प्रकृति के विस्तार की सीमा जब असीम की ओर चल पडी और मन की आलोक विभूषित रंजित रश्मि भी उसके साथ अपना ताना बाना जोड लेती है तो फिर, "जीवन लीला की प्रत्येक जड चेतन अवस्थाये" ब्रह्ममय होकर विश्व-व्यापि नृत्य करने लगती हैं । सारा संसार विद्युत के वभव से चम चम चमकने लगता है और मनमयूर आत्मा की सीमाओ मे जकडा रहकर भी अनन्त मे विलीन हो जाता है । मानवात्मा अपने अधिकार क्षेत्र की चार दीवारो मे वर्षा करती हुई तीनो लोको मे व्याप्त स्वर्णिम दीप्त लोक के दर्शन करने लगती है । किन्तु इस अन्त से अनन्त, क्षुद्र से विराट और क्षणिक से निरन्तर के महाभियान के बीच मे माया का एक पर्दा, खिच गया और तब यह समझने मे भूल होने लगी कि गागर मे सागर भरा पडा है या सागर मे गागर माया की एक झिल्ली ने मानव के अह को उत्तेजित कर दिया और तब उसने देखा, "मैं ही सब कुछ हू । मै ही पृथ्वी का स्वामी, शक्ति पुंज वीर पुरुष हू और मेरे ही अधीन मानव कर्म की सब क्रीडाये है । मैं ही कर्म का मूर्त पिंड महामानव हू" ।

ऐसे ही 'अह' के काल मे प्रतिपल मानवात्मा को यह अनुभव होने लगा कि माया की झिल्ली से दबी हुई उसकी सब शान्त स्वतन्त्र प्रक्रियायें अन्तर ही अन्तर को झकझोर कर लुप्त होने लगी। गागर के अन्तर मे छल छल पानी जैसे अपनी ही सीमित दीवारो से टकरा कर चूर चूर होने लगा, वह अनन्त सागर के मीत मिलन के लिये तडपने लगा किन्तु विरह की दीवारे उसको अनन्त से मिलने मे कठोर बाधक बनी रही। अन्तर का जल यह देखकर मन ही मन मे पीडित होने लगा, "सागर अपनी उत्ताल तरंगो के साथ कैसे मोद मुक्त स्वच्छन्द विचरण कर रहा है। वह कैसे अपनी सीमा मे बंधा हुआ भी अनन्त मे व्याप्त होकर सारी सृष्टि को ब्रह्ममय बना रहा है। उसके शौर्य मे रूप और रग का राज्य मानव के हृदय मे व्याप्त प्रकाश का प्रस्फुरण कर रहा है और वह इतना विशाल होते हुये भी गागर की माया मोहित नगरी के जल को अपने अन्तर मे समेटने के लिये उद्यत है।"

किन्तु अन्त और अनन्त, गागर और सागर के द्वंद संघर्ष ने आपस मे एक ऐसा युद्ध किया कि गरजते बरसते मेघो मे विद्युत ही विद्युत कौंधने लगी। विवेक अपने ज्ञान और चरित्र की बासुरी बजाता इधर आ निकला और घन वर्षण की विद्युत मे तुरन्त विलीन होगया। वह शक्ति की ज्वालायें प्रज्वलित करता हुआ टूट पडा माया की झिल्ली पर और देखते देखते माया खंड खंड होकर सागर के पैंदे मे डूब गई। सागर ने भी अपनी भुजाओं का विस्तीर्ण कर गागर के क्षुद्र जल को अपने उर के अनन्त अथाह जल अभ्यन्तर मे विलीन कर लिया। अब तो दोनो एक होगये, दोनो जैसे विराट के वैभव मे विलीन होकर फिर अनन्त की ब्रह्मयात्रा मे चल पडे। यदाकदा मेघ आते और अनन्त जलराशि को अपने बन्धन मे बांध कर अन्तरिक्ष मे उड जाते। वे अपनी सीमाओ को फिर तोड कर असीमित वर्षा मे बरस पडते और फिर नदी के तटो मे सीमित होकर असीमित सागर मे विलीन हो जाते। असीमित सागर

भी पृथ्वी की सीमाओ मे बंधा हुआ पुन. मेघो की असीमितता मे विलीन हो जाता और प्रकृति का यह विराट अन्त से अनन्त मे विलीन होता हुआ चलता ही रहता ।

इसी विराट के दर्शन करने के बाद मन अपनी माया की झंझटो मे बंधा हुआ झुंझलाने लगा, "छोड दो मुझे, प्रपंचना और वासना के फंदो, मुझे अनन्त मे विलीन होने के लिये अब तुम्हारे क्षणिक सुखों की चिन्ता नही है। मेरा मार्ग निश्चित है; मैं चल पडा हूं निजत्व और स्वत्व की सीमाओ को तोड कर अनित्य और असीम मे अमरत्व प्राप्त करने के लिये"।

और तब ही चारो ओर हरित वसन मडित पृथ्वी और लालिमा रजित संध्या ने चैतन्य विस्तीर्ण मानव डगो को आगे बढने के लिये देवमार्ग छोड दिया। वह अनन्ताकाश में दीर्घाकार प्रकाश की छायायें छोडता हुआ आगे चलता गया—इतना आगे की अन्त मे वह प्रकाश-पुन्ज मात्र रह कर सहस्रादि सूर्यों की किरणो मे अन्तर्निहित होगया।

# हरि पालने झुलावे

अभी अर्द्धरात्रि के घनघोर अंधकार में वह सोने ही वाला था कि कहीं दूर से किसी गणिका के मधुर कंठ की हर्ष विभोर ध्वनि गूंजने लगी—

हरि पालने झुलावे
मलयानिल की समीर सुधा
रहि रहि चरणन् मे गावे।
मृदु कोकिल कण्ठ सुगन्धा
पुनि पुनि घन अमृत बरसावे॥
किल किल किलकारी चलावे
हरि पालने झुलावे।
विद्युत कौंधे पारिजात वन मे
अधरो मे हंसि हंसि भावे॥
नयनो के अन्तरिक्ष प्रण मे
मोतियन माला झिलमिल लावे।
ठुमुक ठुमुक कर मचलावे
हरि पालने झुलावे॥

वह सोचने लगा, "कोई अर्द्धरात्रि मे पाच हजार वर्ष की स्मृतियो को संजोकर साकार हरि के साथ खेल रही है या केवल महफिल के कर्णधारो की लावन्य पिपासा को ही शान्त कर रही है। घुंघरू भी बज रहे है, नृत्य की थरथराती लहरें छनछना कर उसकी निद्रा पर प्रथम हल्का पर्दा डाल चुकी है। इतने मे ही

आजारी निंदिया प्यारी।
ललना की निंदा नियारी ॥
रत्नों की चचल क्यारी।
आजारी निंदिया प्यारी ॥

यह तो लोरी थी। कोई माता अपने हृदय के टुकडे को सुला रही थी। किन्तु वह भी लोरी की स्वप्नावस्था का शिकार होने से वचित न रह सका। निद्रा पर निद्रा का आवरण गहनतम चढने लगा और जब उसका–अपनत्व निशा के हृदय मे विलीन होगया तो वह स्वर्णलोक के स्वप्नो में पहुच गया।

धीरे धीरे उसने देखा, "राजप्रासादो और महलो मे कंचन काया संवारे नन्हे नन्हे बालक रत्नो की चम्मचो से दूध पी रहे है। वे सुनहरे मखमल मे लिपटे अति सुन्दर और सुकोमल अधरो पर किलकारिया मार रहे हैं।" वह देखो, "उस कल्पनातीत प्रागन मे कितने ही बालको का मधुर मिलन। सब एक दूसरे का चुम्बन ले रहे हैं और अठखेलियां खेल रहे है। चारो तरफ प्रसून लदित हरित लताओ से घिरे स्फटिक प्रागन मे निश्चय ही ऐसा मालूम देता है कि अनन्त सागर मे अम्बुज खिल रहे हैं, या फिर अनन्त अम्बर मे टिमटिम तारे क्रीडारत हैं।"

थोडी देर मे उसने फिर देखा, "एक अति सुन्दर रूप लावन्य का विस्फोट करती हुई नयनाभिराम नारी देव तुल्य स्वर्णिम बालको की सभा मे आगई। वह नृत्यमय भाव मुद्रा मे एक कोने मे खड़ी निश्चित निगाहो से देखती रही। इतने ही मे प्राचीके उन्माद से भरे बाल सूर्य की भाति नन्ही नन्ही कोंपले रूप मे चकाचौध सन्नारी के पास कल कल करती दौड पडी। वे सब एक साथ चिल्लाती हुई विहग उठी, मा..........
मां........मा........। फिर मां ने भी उन्हे सीने से चिपका लिया, देवदासिया नृत्य करने लगी, रंगीन बहार बरसने लगी, छल छल

कल केल करते श्रोतो के अतिरजित नाद 'मुकुन्द माधव" के चरणो मे चहक उठे, शहनाइया वजने लगी, राजसी अभिव्यजना मे छोटे छोटे कुसुम-कोमल वालक साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु महान दमकने लगे।"

किन्तु क्षण भर मे ही किसी पथिक ने पीछे से उसे अति भयकर वेग के साथ धक्का लगाया। वह सम्हल न सका, गोल गेद की तरह लुढकने लगा। लुढकते लुढकते मैदान पार होगया। वह सामने की अति दुर्गम पहाडियो पर गिरने पडने लगा। किसी तरह अति कष्ट पाकर एक घाटी के किनारे पहुचा ही था कि "दुष्काल" अपने महाभयकर भीभत्स रूप मे ठहठहा मारकर हंसने लगा, "अरे तुम आगये, यहां आगये, राजप्रासादो और अनुपम स्वर्ग को छोड कर यहा आगये, सचमुच भूल से आगये या फिर किसी के श्राप से आगये। हा .. हा मैं तुम्हारी मनोकामना जान गया, तुम यहां हमारे वालको को देखने आये हो। यदि मेरा अनुमान सच है तो आओ, मेरे पीछे आओ, डरोमत, चले आओ।"

और वह 'महादुष्काल' के पीछे पीछे चल दिया। दुष्काल भी व्यग हास करता हुआ उसे घाटी के मध्य मे लेजाकर सहसा रुक गया, और वोला, "महादेव, हम नारकीय जीव-जन्तु मानव देह धारण किये हुये तुम्हारे चरणो मे समर्पित है। हम अनादि काल से राजप्रासादो और महलो मे वसने वाले देवताओ के शोषण से ऐसी भयकर नारकीय दशाओ मे पहुच गये हैं कि हम दुख और सुख दोनो के प्रति शून्यमय हो गये हैं। यह देखो, सामने की झोपडियो के कीचड मे देखो, पूर्ण विश्वास के साथ देखो, क्या है ?" इतना कह कर दुष्काल ने अपने दोनो हाथो से उसकी पलको को दवाकर खोल दिया और उसने निर्लिप्तभाव से देखा, "सैकडो झोपडिया तग छोटी छोटी गलियो मे एक दूसरे से सटी हुई है। उनमे लगभग सव झोपडिया टूटी फूटी है। चारो तरफ कीचड ही कीचड फैला हुआ है। और महादुर्गन्ध मे भरे हुये कीचड मे दो दो, चार चार, दस

दस वर्ष के अति भोले बालक खेल रहे हैं । वे अपने आप ही अपना खेल खेल रहे है, न तो देवदासियों के नृत्य, न माताओ की प्यार भरी छातिया। ऐसा मालूम देता था कि आकाश से दुर्भागी तारे टूट टूट कर इस गन्दी घाटी मे एक एक बालक बन गये और अब दुर्गन्ध और कीचड मे सड रहे है।"

इतने मे महारोग ने प्रगट होकर कहा, "और मुझे भी देख पथिक, देवभूमि से आने वाले पथिक, मुझे भी देख"। इतना कहते कहते महारोग ने उसकी पलको को मसल दिया और उसने देखा, "गन्दी घाटी के जन जन, बाल बाल मे क्षय, ज्वर, चेचक, जलधर आदि आदि महारोग फैले हुये हैं। बालको के जिगर बढ गये हैं, पेट जैसे महारोग के नगाडे बन गये हैं, और ऐसा लगता है कि वे सब अब फूटने ही वाले है।"

चारो तरफ मालूम होता था कि सहस्रादि कीडे और लटे महारोग के पालने मे बाल—देह धारण किये हुये चट चट पट पट मर रहे हैं। उनकी चित्कार से कर्ण भिदे जा रहे है, नही नही, अब तो मर्मान्त मे तीर कांटो की तरह चुभने लगे हैं। उनकी हालत देख देख कर उसके हृदय का रक्त खोलने लगा और आखो मे बरबस बरसने लगा।

सहसा दारिद्र्य—दानव ने भी प्रगट होकर उसकी पलकें मसल दी और उसने देखा, "नन्हे नन्हे बच्चो के लिये न दूध है, न फल। उनके लिये न ज्ञान है, न विज्ञान। उनके तन पर न कपडा है, न सोने को चटाई। वे नग्न बच्चे, धूल धूसरित कीचड मे सने, महारोग से तडपते-चित्कारते, तृष्णा भरी दृष्टि से निहार कर सहम गये, सुलक गये।"

तुरन्त ही किसी ने फिर उसे धक्का देकर आगे ढकेल दिया, "और यह क्या? अरे, अरे, देव प्रासादो मे शरद-चादनी महादानवो का अभिशाप बनी क्या कर रही है? कितने ही नरनारी, बच्चे-बच्ची नग्न

प्राय: कठोर सर्दी मे दात कटकटाकर ठिठुरे कांप रहे हैं। यह देखो, अपने घुटनो को पेट में दुबकाये अति कठोर ठंडी हवा से त्राण पाने के लिये अपने दामन बालक जर्जरित पड़े हैं। और यह क्या ? हरे हरे खेतो मे बरसने वाले मोतिकण जल कण इस गन्दी घाटी मे एक एक करके सब छोटे बच्चो को अपने दामन मे समेट रहे हैं शरदकालीन वर्षा की रिमझिम और तन-बदन मे चुभने वाली कंटकाकीर्ण हिमवायु कितने बालको को सुला रही है ......... सदा के लिये ...... अमर लोक की पदयात्रा करने के लिये ?"

उसने देखा, "वर्षा के बादल उमड घुमड कर गन्दी घाटी पर बरस पडे और झोपडियो मे जैसे बाढ ही आगई हो। सब कुछ डूब गया, प्यारे प्यारे नन्हे नन्हे बालक भी डूब गये ...... डूब गये ...... और देवजगत के किसी मानव को पता तक नही ?"

उसने देखा, "महासूर्य अम्बर मे अग्नि और प्रकाश की यात्रा करते करते अपना रास्ता भूल गये और गन्दी घाटी मे आने से पहले देव मानव उसे अपने राज-प्रासादों मे ले गये। अहा, महादानी देवसूर्य की भी यह दुर्गति, ताप और प्रकाश से भी वंचित ये झोपडियां !"

और ऐसा वीभत्स करुणा दृश्य देखकर जब उसका हृदय रक्त नयनो की अश्रु सरिता बन कर बहने लगा तो अट्टहास करता हुआ 'दुष्काल' उसके सामने आ खड़ा हुआ और चीत्कारने लगा, "तुम भूल से यहा आगये हो, देव। यह तुम्हारे आने का स्थान नही है। तुम निरंजन सुख मे लवलीन स्वर्गीय प्रासादो के निवासी और हम नारकीय यातनाओ के कीडे मकोडे, मानव देह मे किसी कर्मन्य अभिशाप की रेखाओ को भोगने वाले परित्यक्त ? तुम हमारे बीच मे से चले जाओ।....... दूर क्षितिज के किनारे, आलीशान महलो मे अप्सरायें तुम्हारा इंतजार कर रही हैं, जाओ....... जाओ........।"

पुन "दुष्काल" ने उसकी ओर घूर कर कहा, "मैं समझ गया, तुम ही अनन्तकाल से हमको अज्ञान और अत्याचार की वेदी पर चढाते आये

हो। तुमने ही हमारा शोषण करके हमको दरिद्र बना दिया है। तुमने हमारे अथक परिश्रम को लूट कर अपने प्रासाद खडे कर लिये है और अब तुम ही हमारी कब्र पर कांचन शाकुन्तल के साथ भोग लिप्सा मे मनमस्त हो रहे हो। तुम ही अनन्त काल से हमारे शत्रु हो। हम तुम्हारे विरुद्ध घोर विद्रोह कर देंगे।"

किन्तु 'दुष्काल' की बुद्धि पर ज्ञान और विवेक की क्षीण रेखा पुनः लुप्त हो गई। उसके हृदय का चिराग पुनः बुझ गया और वह कही खोया सा बोला, "हम कर्म की रेखायें काट रहे हैं। हमारा भाग्य ही ऐसा है। क्या कभी हमारे भी अच्छे दिन आयेंगे? क्या हमारे भी बच्चे तुम्हारे बच्चो की तरह...? ईश्वरेच्छा!"

और इतना कह कर दुष्काल ने सामने की ओर इशारा किया। उसने देखा, "हजारो बालको के शव घनघोर निद्रा मे सोये श्मशान की ओर लेजाये जा रहे हैं। वे सब महाकाल की निद्रा मे सो रहे हैं, वे अब इतने शान्त हैं कि कभी नही जागेंगे ......कभी नही जागेंगे। और यह देखो, श्मशान उनके शवो से पट गया है। चारो ओर गिद्ध ही गिद्ध उन पर मंडरा रहे हैं। कोई उनकी आंखें निगल रहा है तो कोई समूचा हृदय। चारो ओर माता पिता चीत्कार रहे है। अहा, भारत प्रांगन मे ऐसा हृदय विदारक दृश्य!

किन्तु पडोस के राज—प्रासाद से अतीत की भांति ऐसे समय मे भी वही झंकार आरही थी

हरि पालने झुलावे
क्षण क्षण मे मुलक मुलक करि
महि पर स्वर्ग-सुमन लावे।
कचन सी काया मे धरि
जगमग अलख प्रीति जलावे॥'
आनन्द घन बरसावे
हरि पालने झुलावे।

# ईमानदारी का सौदा

सौदे की तोल मे रत्ती दो रत्ती का अन्तर भी ईमानदारी और वेईमानी का माप दंड वन जाता है। वहुधा छोटी सी गणित मे चरित्र की मुटाई परखने का आम रिवाज है। इस प्रकार की व्यवस्था पर ढले हुये समाज की रचना में किसी को दोष देना भी तर्क संगत नही है। एक व्यक्ति दफ्तर के लिफाफो मे अपनी भी दो चिट्ठिया भेजता रहता है, दूसरा दफ्तर के कागज और कारवन को निजी काम मे लेना सामान्यतः व्यवहारिक अधिकार मानता है और तीसरा एक एक दिन अपने कोट मे पिन टांगता—टांगता पिनकुशन ही खाली कर देता है। और यह कव होता है, दिन दहाडे, सव के सामने। वस्तुतः इस प्रकार सुविधाजनक वस्तु उडाने मे कोई भी किसी को चोरी का अपराधी नही समझता क्योंकि रद्दी के भाव जहा कागजो और कारवनो का दुरुपयोग हो वहा इन छोटी-छोटी सी वातो पर नुक्ताचीनी करना सचमुच वहुत ही अधिक तुच्छता है। एक ईरानी कहावत मे शिक्षा तो अच्छी दी गई है। यदि किसी गाव मे अफसर गांव का नमक भी मुफ्त खालेगा तो उसके कर्मचारी गाव के गाव को "स्वाहा" कर देंगे। इसी प्रकार यदि किसी विभाग का अफसर एक दिन भी "चोरी" (व्यवहारिक शब्दो मे—सुविधाजनक उपयोग) कर लेगा तो उसके क्लर्क और चपरासी सारे विभाग को ही दीमको की तरह खा जायेंगे।

किन्तु फिर भी आज के युग मे ऐसी छोटी छोटी वातो की ओर ध्यान देना लोगो को प्रिय नही लग सकता है। इस प्रकार के विषयो को लेकर नुक्ताचीनी करना भी कुछ "छोटी और ओछी" वात लगेगी।

आज की सभ्यता उस आदमी को "चोर" नही कहेगी जिसकी पगडी मे भूल से या असावधानी से पडौसी की छप्पर का तिनका चिपट कर आगया है। आज की विचारधाराओं मे इतनी नैतिक ढिलाई को मान्यता प्रदान की हुई सी प्रतीत होती है और इसलिये इस प्रकार की चोरी को हम अधिक गंभीर रूप देने का प्रयत्न न करे वही अच्छा है।

किन्तु बडी चोरियो के रूप भी आजकल ऐसे आधुनिक और तर्क संगत होगये हैं कि शायद ही कोई उसे चोरी की संज्ञा दे सके—और फिर भी हजारो रुपयो का माल इधर से उधर हो ही जाता है। सामान्यतया हिसाब का आडिटिंग होने के बाद कौन कह सकता है कि किसी ने चोरी की है। यहां यह मानना भी उचित नही कि सरकारी आडिटर किसी का पक्षपात करते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि सरकारी मशीन के जिन्दापुर्जे अधिकारी को उसके नियम पैमाने और दर्जे से आकते है और जब सोना कसौटी पर खरा उतर आये तो फिर किसी की क्या हिम्मत कि चोर की चोरी पकड सके !

एक उदाहरण लीजिये। कुछ समय पहले प्रिय जनो की एक गोष्ठी मे इसी प्रकार की चर्चा चल पडी तो एक महाशय ने बडे गर्व से कहा, "हमारे साहब प्रत्येक सौदे मे कमीशन मारते है तो फिर हम लोग पीछे कैसे रह सकते हैं। किसी ने दफ्तर के लिये सौदा तैय किया और मार लिया सौ रुपये का कमीशन। इसी तरह हमारे विभाग मे प्रति वर्ष हजारो रुपयो की पुस्तकें खरीदी जाती हैं और साहब का १५ प्रतिशत का कमीशन निश्चित रूप से बंधा हुआ है। कोई कहे या न कहे, कमीशन उनके ठिकाने पर पहुच जाता है। कभी कभी नकद रुपये मे अडचन पडे तो अन्य प्रकार की भेट के रूप मे सामान पहुच जाता है।"

किन्तु सामान्य सा प्रश्न यह हुआ, "सब हिसाब का आडिटिंग होता है, और आर्डर देने से पहले टैंडर भी तो मंगवाने पडते हैं। फिर यह

सब झमेला कैसे होता है।"

मेरी बात सुन कर वह महोदय हंस पडे और बोले, "बडी सरलता से यह सब हो जाता है और किसी की क्या मजाल की कोई पकड सके। सारी व्यवस्था बहुत "सेफ" और खतरे से परे है। और देखिये, हमारे साहब खतरे के काम मे कभी हाथ नही डालते हैं।" इतना कहते कहते वे महोदय रुक गये और हमारी ओर देखने लगे।

हम सब कुछ विस्मय में पडे। समझ मे नही आरहा था कि ऐसी कौनसी "फूल-प्रूफ" तरीके की चोरी है जिसे यह महोदय ही नहीं लगभग अधिकांश बडे टोपधारी साहब लोग किया करते हैं। हमारी तीव्र जिज्ञासा देखते हुये उन महोदय ने कहा, "देखिये जनाब, जिस व्यापारी का टेंडर हमे स्वीकार करना होता है उसका हस्ताक्षरो सहित टेंडरपत्र मय सील लगा हुआ हमारे दफ्तर मे उसी प्रकार आता है जिस प्रकार अन्य लोगो के टेन्डर आते हैं। इसमे केवल अन्तर इतना ही होता है कि यह टेन्डर बिल्कुल खाली होता है। हमारा दिलचस्पी रखने वाला व्यक्ति सब टेन्डरो को खोल कर देखता है और खाली टेन्डर में अन्य टेन्डरो की दरो से कुछ नीची दरे भर देता है। बस अब उसका कमीशन पक्का हो गया। अनेक बार अन्य छोटे मोटे क्लर्क आदि भी इस प्रकार की करामात करके लाभ कमा लेते हैं।"

कई बार एक और व्यवस्था भी की जाती है जिसमे किसी भी प्रकार का खतरा नही होता है। दफ्तर का आदमी स्वयं व्यापारी के पास आज्ञा पत्र लेकर जाता है और व्यक्तिगत सम्बन्ध कायम करके यह राय देता है कि वे लोग ऊचे भावो मे टेन्डर दें। पाच-सात ऊंचे भावो के टेन्डर लेने के पश्चात् यह महोदय अपने परिचय के व्यापारी से कुछ नीचे के भावो के टेन्डर भरवा लेता है और इस प्रकार माल का आर्डर उसी व्यक्ति को मिलता है जिसको कि वह स्वयं चुनता है।

उन महोदय ने कहा, "लगभग प्रत्येक दफ्तर के अधिकारी इस प्रकार की व्यवस्था से जो सौदे करते हैं वह प्रत्यक्षतः "ईमानदारी का सौदा" होता है। इस प्रकार के सौदा को न तो कानून ही चुनौती दे सकता है और न सरकार ही सारी व्यवस्था को कागजो पर सही उतारती है। कही भी जाली दस्तावेज आदि नही होते है। अब आप ही बताइये, चाहे फौलाद की अलमारियां खरीदी जायें या पुस्तकालय की पुस्तकें, बन्धुगणो का कमिशन तो बावन–तोला पाव रत्ती खरा उतरता है।"

विचार गोष्ठी की इस खुली चर्चा से किसी के भी मस्तिष्क मे गंभीर प्रतिक्रिया हुये बिना नही रह सकती। नैतिक शिथिलता और आचरण के नियमो मे ऐसी व्यवस्थाये परिपक्व हो गई है कि जिनमे "हम न तो पिन की चोरी करने वाले को चोर कहते हैं और न ही पुस्तको के टैंडर पर कमिशन लेने वाले को"!

## जिसके क्रन्दन काल के कम्पनों में
## रूनझुन रूनझुन करते फिरते हैं।

अनन्त के विस्मृत छोर को खोजती हुई यह नैय्या कभी चट्टानो से टकराती, तो कभी लहरो के थपेडो मे सतुलन खोती हुई डावाडोल हो रही थी। किन्तु उसे न अन्धकार की चिन्ता थी न प्रकाश की खुशी; नीरव मे प्रयाण ही उसका लक्ष्य था और खेवटिया उसका ऐसा मधुमाता था कि कभी चंचल लहरों मे झिलमिल तारों को रत्नो की चादर समझ कर सिमेटने लगता तो कभी ऊषा के बाल सूर्य को ताकते आनन्द विभोर हो जाता। वह भी तब मन ही मन स्वर्णाभ स्वप्नो की मधुवेला मे झनन झनन करते हुये कह उठती, "मनु, ओ मनु !" मैं नौका और तू खेवटिया। मेरे घट मे कितने ही यात्री बैठे और किनारे लग गये। सब को मैने उस पार उतार दिया, किन्तु खेवटिया ! अब की तुम्हारी बारी है। नियति की आज्ञा है कि अब तुम भी किनारे पर उतर जाओ और छोड दो मुझे अकेले ... ... ... बिल्कुल अकेले .. .. इस अपार जलधि मे गोते लगाने के लिये, मार्ग भटकने के लिये और एक दिन कर्मण्य प्राणो की चट्टानो से टकराकर चकनाचूर होने के लिये। और यह लो, मैं किनारे पर आ गई हू, तुम उतर जाओ और चले जाओ सीधे अपने उस भौतिक लक्ष्य की ओर, जिसमे मानव भ्रम बन्धन चक्र मे फंसता हुआ शक्ति और सम्पत्ति का निर्माण करता है। तुम्हारे लिये नियति की यही आज्ञा है कि तुम स्वर्ण और सुन्दरी के महावत बन कर राजसी नायिका के स्वामी बनो, भोगा भोग मर्त्यलोक मे जड चेतन का पुन्य संचित करो और सदा "अमर गीत की गुंजान मे यह पूछते रहो, सुख, सुख, तू कहा है" ?

खेवटिया मे अन्तर्द्वन्द का सन्नाटा छा गया। उसे इतना ध्यान ही नही था कि एक मनोहर जीवन सगिनी नौका को छोड कर किनारे पर खडे रथ, हाथी, घोडे, पालकियो की सवारी मे चवर डुलवाते हुये जाना पडेगा। उसका भी मन नही मानता था, सामने जो सतरंगी कुवेर की माया हुल्लास का सोना ताने वुला रही थी। खेवटिया के सामने असमंजस का भवर चक्रव्यूह वना रहा था। उसने नौका से कहा, "अरी देख, तूने मेरी वड़ी सेवा की है। किन्तु अब मुझे तेरा चोली दामन छोड कर जाना ही पडेगा। किन्तु देख, मुझे भूल मत जाना। याद करती रहना कभी कभी" और फिर एक स्नेहसिक्त रस वर्षा के साथ आखो मे आसू डबडबाते हुये उसने कहा, "नौका, कितना मधुर था तेरा सुखद आलिगन। तू मुझे भूल न जाना"। और इतना कहते हुये खेवटिया ने नौका को स्थिर दृष्टि से देखा तो नौका ने भी एक अन्तर दृष्टि मे पुलकित होकर कहा, "प्रियस्वे, मेरा स्वभाव ही भूलना है। मेरे घट मे अनन्त काल से यात्री वैठे आते हैं और किनारा आते ही उतर कर चले जाते है। मैने किसी को भी याद नही रखा।" और एक बार फिर प्रेम पुष्प की वर्षा करती हुई नौका ने सात्वना देते हुये कहा, "खेवटिया पथिक! स्मृति पटल पर अनन्त की मोह रेखायें यदि विस्मृत नही हो जाती तो मैं कब को पागल हो गई होती। मानव स्मृति भी एक भार है जिसके क्रन्दन काल के कम्पनो मे रुनझुन रुनझुन करते फिरते है और विरह के वेग बन कर हृदय की धडकनो का मोह बन जाते हैं। यह मोह ही महापाप जन्म और मृत्यु का कारण बन कर अब तक मुझे तेरे पाश मे जकडे हुये था। आज मैं भाग्यशालिनी! मोह मुक्त ही नही स्मृति मुक्त भी हू।" नौका ने हृदय की धाराओ के वेग को संतुलित करते हुये कहा "तुम्हारा हृदय टूट रहा है, क्यो? विरह की वासनाओ मे निकटता की शिरायें फूट रही हैं, क्यो? देव, अनन्तकाल से यात्रियो को मेरे हृदय पाश से मुक्त होते हुये देख कर भी तुम मुक्त नही हो सके? और अब जाते जाते भी अपनी स्मृति की छाया मेरे अन्तर मे संजोकर

रखना चाहते हो, जैसे मैं उन्हें विरहिन बनी पूजती रहू, आखो से आंसू बहाती रहू और हृदय की दावानल मे दहकती रहूं। देव। स्थूल शरीर के लुप्त हो जाने के बाद अब तुम सूक्ष्म शरीर की स्मृतियां मेरे अन्तरंग मे रखकर जाना चाहते हो। किन्तु अब मैं स्मृति की माया और छाया के मोह से वंचिता स्वच्छन्द नौका हूं। मेरे अन्तर पट खुल चुके हैं, नेत्र ज्योतिर्मय हो चुके हैं और हृदय के मथनो मे से रत्न निकल चुके हैं। तुम स्मृतियो के जंगल को धूल धूसरित करके नये खेत मे नये बीज बोना और नये वृक्षों के नये फलो का आस्वादन करना।"

और इतना कहती हुई नौका जलधि की अनन्त लहरो पर थिरकती हुई बह चली। खेवटिया अवाक सा देखता ही रहा, देखता ही रहा, उस समय तक कि जन्म जन्म की सगिनी नौका सागर के क्षितिज मे विलीन न हो गई। वह उन नीरव की रेखाओ मे कुछ खोज ही रहा था कि शंख ध्वनि गूंज उठी और सारथी ने आकर कहा, "महाराज, रथ तैयार है, हाथी, घोड़े, पालकी भी तैयार है, चलिये।"

❀

# मैंने क्या देखा?

क्या देखा, और क्या नही देखा, सच तो यह है कि आखें फाड़ फाड़ कर और हृदय को काट काट कर देखा और तुरन्त ही अनदेखा कर दिया। देखा–देखी की उस आखमिचौनी मे कभी "सरकारी वहिन" आगे–आगे वढ जाती, कभी पीछे रह जाती और कभी उसके विल्कुल वरावर। वह केवल इतना ही सावधान रहता कि कही वरावरी की होड में कंधा न भिड जाये क्योकि कई महानुभावो ने उसको पागल करार जो देदिया था। किन्तु पागलो को सव कुछ क्षम्य है, सभ्यता के चिन्ह उनकी भूली विसरी विरासत के अमूल्य रत्न हैं, उनकी मस्ती के मार्ग मे कोई आ न जाये, फिर कूट कूट कर "मीरा भई वावरी" का रंग पक्का लग जाता है। पर यहा वहकने की जरूरत नही है।

टेलिफोन पर किसी ने कहा, "देखो हम गन्दी वस्तियो मे स्पेक्टेक्यूलर रिजल्ट्स चाहते हैं...........आपके पास वह आयेगी और आप ........ ..।" इससे वहुत पहले ड्राइगरूम मे उसने मन की पीडा शान्त करने के लिये संकेत कर दिया था, "और कही साडी का पल्ला कीचड मे सन गया तो मुझे दोष मत देना"। इस पर वे हस दिये। पर उनकी हंसी इतनी महत्वपूर्ण नही थी जितनी कि उनकी मेम साहव की हसी की वह लहर व्यगात्मक किरणें नही वल्कि सागर पर तैरती मृदुल लहरें थी। उसके मन मे तो अब भी श्रद्धा से समाई हुई है।

पर यह सव शरीर के अलंकारमात्र की वात है। हम आगे वढे, या "समय" ने हमको धक्का मार कर आगे वढा दिया। मोटी वालू की तह पर तह और उस पर जीप के पिछले विकराल पहिये–घुर...........

धुर ...... धुर.........धुर ...... की तान और पिछडे वर्गों की झोपडियो मे सडते गलते देखने का मीठापान, पता नहीं यह सब उसके मन की बात है या निकट से सटी हुई बहिनजी की, पर आखिर ऊषा के विभोर मे जीप एक मिट्टी की झाडफूस से ढकी हुई झोपडी पर झट से रुक गई। पास खडे बाल–वृद्ध जनो ने मोटर मे से उन लोगो को उतरते देखा, "किसी ने तनिक सा मु ह फुलाया, किसी ने आखें निकालीं, पर निश्चय ही अधिकतर ने उन्हें स्वर्ग की सीढियो से उतर कर आने वाले देवता ही समझा" । हम पग पग पर पेंट की "क्रीज" या फिर साडी के पिछले पल्ले की हवा मे मन्द उडान की फिक्र परस्ती मे मस्त आगे बढ गये ।

एक स्थान पर मैने रुक कर पूछा, "बाबा, हम तुमसे कुछ बात करेंगे" । बाबा बडे बावरे निकले । वह तो जैसे हमारा इन्तजार ही कर रहे थे । हमे पता नहीं, युगो के युग बीतने के बाद हम "देव दर्शन" देने पहुचे थे ? पर क्षण भर में ही बीस पच्चीस मिट्टी मे नग धडग खेलते कूदते बच्चे, दस बीस औरत मर्द, बस्ती के किनारे हमको घेर कर खडे होगये । दो चार ने खाटें बाहर निकाली । प्रेम से हमको बिठाया ।

एक प्रकार का मजमा जम गया था । किसी बाजार मे वैधानिक कानून को तोड कर डंके की चोट से दवा फरोख्त करने वाले मदारी मे और हम मे एक महान फर्क अवश्य था । वह मदारी परिवार नियोजन के युग मे प्रजनन शक्ति के विकास और विराम की बाते करता है तो हम छूआछूत, भेदभाव, वर्गवाद आदि को दूर करने के लिये धु आधार आलाप–प्रलाप के आवरण मे मेल मिलाप (न कि प्रेम मिलाप) करते फिरते हैं । पता नही, कौनसा मदारी व्यर्थवाद का पोषण करता है ? हा, इतना अवश्य है कि एक पैसे लेकर दवा देता है और दूसरा पैसे देकर दवा देता है ।

अभी बन्धुबान्धवो का समा बना ही था कि मैंने एक हिमाकत कर डाली। मैंने एक अधेड से (फटेहाल फटेहाल इसलिये कि वह अपनी लाज-शर्म भी नही बचा पा रहा था) कोली से पूछा, "आपको क्या किसी प्रकार का कष्ट है।" वह सुनकर चुप रहा। मैंने फिर पूछा, "बताओ, बहुत नही तो एकाध बडे कष्ट की बात ही हमे सुनाओ"। पर वह मेरी ओर बहिनजी की ओर आखें फाड फाड कर देखने लगा। ऐसा लग रहा था कि बादल बरसने के पहले अपनी शक्ति बटोर रहे है, गरजने के पहले घर्षण कर रहे हैं। विद्युतमय चकाचौंध मे अंधकार की भी अपनी ज्वालायें होती है और उन्ही को सुलगाने के लिये वह चुप रहा होगा। पर समुद्र के भी सीमायें होती हैं, अन्तरिक्ष के भी क्षितिज होता है, अनन्त के इस उच्छ्वास मे अन्त की धारायें फूट पडी, "दुःख ................ दुःख ................ तुम हमसे दुःख का लेखा लेने आये हो।" और वह अब खडा होगया, कभी इधर कभी उधर, जैसे चार हाथो का ताडव नृत्य भू पर उतर आया हो, जैसे घूर्णिका मे लहरें थिरकने लगी हो, कम्पन पर कम्पन प्रमादवश झनन झनन करने लगा, "ये रामगंज की अनाज की मंडिया ... .. ... .. अनाज का नीलाम .......... अमीर के लिये भी वही नीलाम का भाव ... ... ... .. और गरीब के लिये भी वही दो सेर के कणुके ? यह है समानता ? हम कैसे जीयें ? हम कैसे इतना मंहगा अनाज खा सकते हैं ? हमारे लिये अनाज सस्ता करो। हम भूखो मरते हैं ?" और वह फिर अधरो मे मृदु मुस्कान, आखो मे मृदु–ध्यान, पांवो मे मृदु–कम्पन पर हृदय मे उष्ण–दावानल सुलगती ज्वाला को समेट कर फिर नृत्य मे लवलीन होगया। बहिनजी अपनी असमर्थता प्रदर्शित करती हुई बोली, "यह समस्या बहुत बडी नीतियो से जुडी हुई है।" वह वृद्ध कुछ नही समझा, पर मैं समझ गया, "समाजवाद की खिल्लियां उडाई जा रही हैं।"

हम अपना सा मुंह लेकर आगे बढे। फिर वही जीप की गुरगुराहट,

मिट्टी के टीलो को चीरती हुई एक झोपडी के बाहर रुक गई। हम सब पैंट में हाथ डाले या साडियो को समेटते हुये उतर पडे। यहा देखते देखते हमने मजमा लगा लिया। जब सब ठीक होगया तो बहिनजी अपनी कीमती डायरी निकाल कर पूछने लगी, "इस बस्ती का क्या नाम है"। एक बदनसीब ने कह दिया, "तोपखाना हुजूरी चमार बस्ती"। पुन-प्रश्न हुआ, "यहा कितने घर है"? किसी ने कह दिया, "यही कोई ५०० घर हैं"। पुनः प्रश्न हुआ, "लडके पढने जाते हैं?" उत्तर मिला, "किसी किसी को छोड कर बाकी पढने "नही जाते है"। फिर पूछा, "लडकियां पढने जाती हैं?" उत्तर मिला, नही जाती है"। प्रश्नो की फूलझडिया ही तो हमको सुलगानी थी, क्योकि एक तरफ मजमे का समा बना रहे और दूसरी तरफ डायरी का पृष्ठ भर जाये। और प्रश्न और उत्तर के बीच न मालूम क्या क्या तर्क कुतर्क चले। कोई काव्य पुरुष साथ होता तो महाकाव्य लिख लेता और कोई कालीदास होता तो बीसवी शताब्दी के अनेक "शाकुन्तल" पात्रो को बटोर लाता। पर इतने मात्र से हमारे मन की शान्ति होने वाली नहो थी। इसलिये बहिनजी ने पूछा, "आह, लोगो की क्या क्या तकलीफें हैं हमे कुछ बताइये"? बस इतना काफी था। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये घृत की कुछ बून्दे ही काफी होती हैं। कुछ लोग कहने लगे, "चलो, हमारे साथ जरा इधर आओ"। अभी तक हम दस पाच कदम ही चले थे कि, एक नल के चारो ओर उल्टी बालटियो, चरियो के अम्बार लगे हुये थे, चारो तरफ ५ वर्ष से लेकर ५० वर्ष तक के बालक–औरत–मर्द झुन्ड मे खडे थे, प्रतीक्षा कर रहे थे, बादलो के बरसने की नही, बल्कि वरुण देवता के लोह सीकचो मे से बाहर निकलने की। कब जलधारा बरसे और कब हृदय के सूखे नेत्र हरे भरे लहरायें, सुबह से दोपहर, दोपहर से शाम, शाम से रात हो जाय, तो भी क्या, और फिर पाच हजार कुटुम्बो की बस्ती मे पाच नल भी नही, आधुनिक योजनावाद का एक ऐसा नंगा धर्म संकट है, जिसका कम से कम एक बडा भारी लाभ

अवश्य है और वह यह कि अतीत के कुओं पर कृष्ण काल मे जो "नर नारिन" की भीड हुआ करती थी वह अब काली कलूटी "टूंटी" के चारो ओर होती है। हा, एक मधुर अन्तर अवश्य है। कृष्ण काल में वृज के बावरे "नारिन" से छेडछाड करने कुओं पर आजाते थे या कोई कवि गागर मे सागर डांवाडोलित किये ठुमुक ठुमुक कर चलती नारिन पर महाकाव्य की प्रथम चार पंक्तियां कुछ इस प्रकार लिख देता—

शैल, मनोहर, प्रिय वसना
केश कलाप कटि पर्यंत सखी।
छलछल करती गागर का
नीर उछाले नयनों मे सखी।।

## टूंटी के तट पर

किन्तु आज तो नारदकला की झङ्कार ही अधिक लोकप्रिय है और इसीलिये "यदि कोई पहले वरुण देवता को गागर मे भरलें तो पचास घड़ों के मालिक उस पर टूट पडेंगे, घडे फूट जायेंगे, तू तू मैं मैं का अलखनाद गूंज उठेगा और कभी किसी की पत्थर लकडी से भी पूजा हो जाये और फिर "इमरजेन्सी" मरहम पट्टी की भी नौबत आजावे तो कलिकाल के पुराण वक्ताओं के दाव लग जायेंगे और रग रग मे खून चमकने लग जायेगा।" कैसा है यह अनुपम संगठन "टूंटी के चारों ओर" और जब बहिनजी ने कहा "मैं स्वयं म्यूनिसिपैल्टी जाऊंगी, अध्यक्ष से मिलूंगी, यह—वह सब कुछ करूंगी" तो वह ठिठक गया। क्या? वह तो उबड-खाबड जमीन पर चलने फिरने का अभ्यस्त हो चुका था पर नई नई बहिनजी अभी मैदान मे आई ही हैं। कहीं ऐसा न हो कि आगे चलकर मन की मुराद भस्म हो जाये और फिर वही "ढाक के तीन पात" गिनने की नौबत आ जावे। पर अपने मनको उसने सन्तोष

दे लिया, "इन पिछड़ी वस्तियों में नल विजली आदि लगाने का एक 'सीजन' आता है और वह होता है देश मे आम चुनाव आने का समय। उस समय देश भक्ति की लौ जल जाती है और हमारे "सत्पुरुष" कल्पवृक्ष बन कर फल देने लगते हैं। अतः यो बहिनजी ऋतुकाल का इन्तजार करने को तैयार नही हो तो उनकी गति वे ही जाने।" इस प्रश्न को देख कर मन में एक और कसक जागृत हो उठी। कुछ दिन पूर्व लोकप्रिय नेहरू ने प्रधान मंत्रित्व छोड़ने की घोषणा की थी और फिर वाल प्रकृति नेहरू ने तीन ही दिन मे हा.... ...... ना... ........की रस्म मे अपना पद त्यागने का विचार भी त्याग दिया। खैर, जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ, किन्तु यदि नेहरूजी अपना पद त्याग देते तो, "कही उनको भी टूटियो के किनारे, विजली के खम्भो के सहारे, भ्रष्ट अफसरो की वगल मे और न जाने कहाँ कहां खाक छाननी पड़ती। पता नही ऐसी खाक छानने मे नेहरूजी अशोक कालीन "देवाना प्रिय" वन कर सदा के लिये अमर होजाते या खाक छानते छानते सदैव के लिए खाक में ही मिल जाते। जीवन की गति को कौन जाने? अभी गांधीजी का वलिदान वहुत पुराना नहीं हुआ है। पर हा, प्रधान मन्त्री के अन्तिम निर्णय से अन्तिम विवाद की जिज्ञासा भी समाप्त होगई है और गण-मान्य वन्धुओं ने अपने अपने वगलो मे (झोपड़ियों में नहीं) भरपेट भोजन किया।

हम और आगे वढ गये। वही जीप की वेढगी रफ्तार, सामने का पहाड़ की तरह सीधा खुर्रा। गाडी घुर्राटे के साथ चढ गई पर अन्तिम सीमा पर यकायक रुकी। क्षणभर के लिये मनो में भय छा गया, "कही उल्टी न हो जावे"। पर नही, मोटर मे सवार होना भी आजकल की घुड़दौड़ ही है, एक मे लगाम पकडी जाती है और दूसरी मे हेंडिल, एक पैट्रोल पीती है तो दूसरी घास चरती है पर 'अश्वशक्ति' की नाप झोक के विना मोटर भी चल नहीं सकती और शायद सास फूलने से

पहले "अश्वशक्ति" मे ताकत का भी ज्वार होता है उसी के कारण जीप खतरे से बाहर होगई। यह हो सकता है कि किसी किसी के लिये यह खतरे की बात न हो, पर अनाडी असवार के लिये कौनसा खड्डा खतरा नही है।

कुछ भी हो मोटर चालक ने पूछा "कहां चलें"। "कही भी चलो"। और वह ले गया हमको शिकारियो के मोहल्ले मे गन्दी मिट्टी और गन्दी झोपडियो के किनारे। कुछ शिकारी पिंजरो मे बन्दरियो को बन्द किये बैठे थे। कुछ ने बन्दरियो को बाहर जंजीरो से बाध रखा था। हम अन-जाने पथिक रुक गये अपनी हविस को शान्त करने के लिये और देखने लगे बन्दरियो का खेल। बन्दरिया भी कम नही थी। उछलकूद मे पकड़ लेती बहिनजी की साडी का पल्ला, और यदि खीच लेती तो परिणाम भयंकर ही होता। सतयुग मे तो द्रोपदी का चीर हरण बचाने के लिये भगवान् कृष्ण प्रगट हो गये थे पर आज के कलियुग मे कौनसे भगवान कृष्ण इस भूमि पर अवतरित होगे ?

और प्रश्नो की, शकाओ की, उत्तरो की,...... नही, नहीं, कल्याण-मय अमृत बौछारो की दूसरी वर्षा करते हुये एक चिडियाघर से दूसरे मे, तीसरे में, सर्पाकार इधर उधर दीखती दैत्याकार जीप मे बैठे, पहुच गये एक और हरिजन-खटीक बस्ती मे। यहा भी यही मजमा। बच्चो का ढेर! दु:ख दर्द की कहा सुनी के बाद बहिनजी वही नपा तुला मंत्रो-च्चार करने लगी "आप इन बच्चो को स्नान कराया करें। पर हा, यदि पानी नही मिलता तो भी कोई हर्ज नही। बच्चो को गीले कपडे से ही पोछ दिया करिये। और देखिये सुबह उठने के दस पन्द्रह मिनट बाद इनकी आखो को अवश्य धोडालें। सारे शरीर की गर्मी आंखो मे समाई रहती है। आंख धोने से शरीर की गर्मी निकल जायेगी और बीमारियां बिल्कुल नही होगी।" पर खटीक बस्ती के लोग कहते गये, "पीने का पानी

नही मिलता, बिजली की रोशनी रास्ते मे भी नसीब नही होती, बीमारो को दवा नही मिलती, बच्चो के लिये विद्यालय नही है आदि आदि और इन सब का बहिनजी के पास एक ही उत्तर था, "शनिश्चरजी के मन्दिर मे हमारे पास अवश्य आइये, अपनी दरख्वास्त लाइये। हम आपकी बहुत बहुत बहुत मदद करेंगे।" सचमुच वात्सल्य प्रेम से गद्गद् बहिनजी का रोमांच देखते ही बनता था और अपढ अज्ञानी जनता एक बार फिर हृदय की रक्त शिराओ मे भरोसा नाम का तत्व सचलित कर लेती थी।

आगे चल पड़े। मेहतरो की बस्ती आगई। स्त्रिया टोकरिया बना रही थी। टूटे फूटे खडहर झोपड़े और फिर वही प्रश्न, "तुम्हे क्या दुख है?" ऐसा लगता था जैसे भगवान बुद्ध द्वार द्वार पर मानव दुखो की भिक्षा मागने के लिये निकल पड़े हो। प्रतिपल सहस्रादि मुख बोल उठे, "हमारे झोपड़े फूट गये हैं, और म्युनिसिपैल्टी के अधिकारी हमे दिनरात तंग करते हैं। हमे झोपडो की मरम्मत करने की इजाजत दिलाइये। हमे टीन की चद्दरें कंट्रोल के भाव से दिलाइये। हम बड़े दुखी है। हम हरिजनो को सवर्ण नल पर पानी नही भरने देते हैं। हमारे लिये नल लगाइये"। बीच बीच में हमने कहा, "कैसी अजीब बात है। क्यो, तुम्हें टूटे फूटे झोपडो की मरम्मत की इजाजत क्यो नही मिलती? क्या किसी को भी इजाजत नही मिलती?" इतने मे ही कुछ कानाफूसी हुई और एक बोल ही उठा, "मिलती क्यो नही? पैसे की चाट है। इधर पैसा दो और उधर इजाजत लो। पर हमारे सब भाई रुपया देने को कहा से लाये।" मैंने कहा, "तुम बुरा कर्म करने वाले को पकडाओ। सरकार का भ्रष्टाचार विभाग जो है"। उसने मेरे शब्द सुने, अवश्य सुने और बहुत तीक्ष्ण कान खड़े करके सुने और फिर सरकार ........ सरकार .............. करते हुये नीची दृष्टि करके मुह फेर लिया। वह हमारा लिहाज रखना चाहता था, बहिनजी के इस प्रवचन को भी ताक मे धर रहा था, रिश्वत लेने वाले से देने वाला ज्यादा बड़ा अपराधी है। तुम रिश्वत देकर बड़ा अपराध करते हो। और फिर

टूटे फूटे झोपडो के हरिजन मालिक से पूछा, "अब तो तुम पैसे नहीं दोगे न"। वह प्रवचन का अर्थ समझता था पर अपनी अपनी आवश्यकताओ और वर्तमान परिस्थितियो का कुचक्र भी। इसीलिये उसने गर्दन हिलाकर अपनी अस्वीकृति प्रगट करदी। हमारे लिये अधिक देर खडा रहना संभव नही था। हम एक और झोपडे मे चल दिये।

"क्यो बाबा, तुम्हे क्या कष्ट है ?" वही रटा हुआ पुराना वाक्य! अत्यन्त सूखी सी रोटी को बिखरी हुई कढी से किसी तरह खाते खाते वह बोला, "दुख .. ...... दुख ...... ... दुखी की कहानी सुनकर क्या करोगे? बहुत दुख है। लो, एक यही कि मेरी पत्नि के केन्सर होगया था और अस्पतालो मे मैं मारा मारा फिरता रहा, कही कोई सुनवाई नही हुई। आखिर वह मर गई। खैर, केन्सर बडी चीज है। पर छोटी मोटी बीमारियो के लिये भी हमारी कोई सुनवाई नही हैं। हमारी पुकार कौन सुनता है? हमारे दुख कौन देखता है? आपके जैसे अनेक महानुभाव यदाकदा हमारा तमाशा देखने के लिये यहां आजाते है पर कभी किसी को कुछ करते धरते देखा नही। सब जले पर नमक छिडकना ही है। पर हा, आपने अवश्य ही बडी कृपा की है जो यहा आये है। हमारे सौभाग्य हैं। यदि दुखीजनो की पुकार ही सुननी है तो इस बहू की आखें कबसे खराब हो रही है। मेरी तो कही कोई सुनता नहीं, आप ही इसका इलाज करवा दीजिये।" बीच बीच मे बहिनजी डायरी मे नोट करती जाती थी, अस्पताल जाने का भी आग्रह करती जाती थी और अन्त मे स्वय किसी दिन उसको अस्पताल लेजाने का "आफर" भी दे आई।

झोपडी से बाहर आये तो हमने देखा कि १९५८ के ज्येष्ठ माह का सहस्रादि किरणधारी भास्कर अपनी प्रचंड शक्ति से भूमि को तवे सा तपा रहा था। हम भी भूखे प्यासे चल पडे अपने अपने बंगलो की ओर, पंखो और खसखस की ठंडी हवा मे सोने के लिये।

शीघ्र ही मोटर मेरे निवास की "हवेली" पर रुक गई और जब मैं उत्तर कर अन्दर जाने लगा तो वहिनजी ने पुकारा "साहब जरा सुनिये"। वापिस मोटर के पास गया। वे बोली "मैं हरिजन और पिछडी बस्तियो के इन दौरो की रिपोर्ट संचालक महोदय को दे दू गी। एक कापी आपके पास भी भेज दू गी"। मैंने कहा, "कोई आवश्यकता नही" और मैंने गर्दन हिला दी! पर अन्दर आफिस के दरवाजे का ताला खोलते मेरा सिर चकरा गया था। मैंने आपही आप विचार लिया था कि रिपोर्टें मे क्या होगा? "यही न कि हम इतनी बस्तियो मे गये, वहा तुरन्त नल चाहिये, बिजली चाहिये, विद्यालय चाहिये, औषधालय चाहिये आदि आदि। कितने लोग अब तक इन बस्तियो को भारत का म्यूजियम (या यो कहिये रीअल इडिया) समझ कर घूम आये, कितनी रिपोर्ट पेश होगई, और वे सब कहा गई? निश्चय ही, अलमारियो के दस्तरे मे दीमको का भोजन बन रही होगी? पर मन को तसल्ली दिये बिना काम नही चलता। सम्भवत. प्रगति की यह अनिवार्य चक्करदार सीढिया हैं?"

आफिस का ताला खोलकर पंखे के नीचे पड़ते ही मुझे वे शब्द याद आगये जो मैंने वहिनजी से प्रथम मिलन पर हटात् कह दिये थे, "आप कल्याण की बात करती हैं, यह बडा अच्छा है। पर एक प्रकार की जागीरदारी खत्म होगई तो क्या हुआ, दूसरी प्रकार की अति भयंकर राजनैतिक जागीरदारी आरम्भ होगई। आपमे इन जागीर विभागो को बन्द करने की सामर्थ्य नही है और तब तक सच्चा लोक कल्याण भी नही हो सकता है।" इन शब्दो पर वे आखें मल कर देखती ही रह गई। शायद आगे बात न बढे, इसलिये उन्होने कहा, "आठ बज गये। समय बहुत होगया। मैं अब चली।"

—

# भेद की दीवारें

एक संध्या को छत पर टहलते टहलते चैतन्य ने प्रियम्वा से कहा, "अबकी बार तुम भी मेरे साथ बडे बडे लोगो के बंगलो पर दीपावली ढोकने के लिये चलना, अवश्य चलना, नही नही, तुम्हें चलना ही पडेगा"। प्रियम्वा सकुचाई, नारीजन्य सकुचाहट मे जैसे किसी ने लज्जवन्ती को छू लिया हो, कोमलता ने अपना सिर नीचे कर लिया। चैतन्य ने पुन. कहा, "तुम्हें चलना ही पडेगा"। उसने पूछा, "क्यो, फौजी शासन है"? चैतन्य ने उत्तर दिया, "हॉ"। उसने पूछा, "कारण"। उत्तर मिला, "कारण कार्य के बाद स्वतः ही समझ मे आयेगा"। तब एक अजीव मृदुता के साथ उसने कहा, "तुम बडे रहस्यमय हो। मैं दस वर्ष से तुम्हारे साथ रहती हू, किन्तु तुम्हारी बातें मेरी समझ में नही आती।" चैतन्य ने कहा, "भेद की दीवारे हमारे बीच मे पडी हुई हैं भौतिक भेद की नही, अभी तक आत्मभेद की, मन के भेद की। तभी तो मैं कहा करता हू कि विधाता की गलती से तुम मेरी पत्नि बन गई, अन्यथा यदि हम-तुम कही खेल के मैदान मे मिले होते तो जीवन को कथा कुछ और ही होती। पर अब भी समय है, भेद की दीवारें, मन और प्राण की दीवारे मिटाने का, और इसका एक बडा ही सरल उपाय है"। उसने आतुर होकर पूछा, "क्या वही पुराना राग, तलाक....... तलाक.......अनर्थ,... यह तब नही होने का.. ....नही होने का"। और इतना कहकर वह एक अबोध बालिका की तरह हसने लगी। चैतन्य ने इतना ही कहा, "नही, नही, आत्म तलाक नही, शारीरिक तलाक। हम शारीरिक समन्वय की दीवारें तोड कर आत्म समन्वय के क्षितिज पर मिलने चल पडें तो कैसा होगा। अच्छा, अभी तुम्हारी

समझ मे यह दार्शनिक बातें नही आयेगी । कुछ काल और भाग्य के सहारे चल कर दुख भोगना बाकी है, बधनो मे बधना भी बाकी है, उसके बाद स्वयं बधन ही तुम्हारी शक्ति की चेतना बनकर भेद की दीवारें समाप्त कर देंगे । मैं तब तक के नैसर्गिक परिवर्तन के लिये तैयार हूं" ।

किन्तु मूल प्रस्ताव की जडें फिर हरोभरी होगई । प्रियम्वा ने कहा, "अरे मैं बडे बडे लोगो के, मंत्रियो के, सचिवो के, जजो के, डायरेक्टरो के (चैतन्य ने कटाक्ष से बात काटते हुये कहा "दफ्तर के दारोगा के, चपरासी के, छोकरो के, बुन्दु मिया, कल्लू जाट, मन्ना पटेल, लल्लू चमार के घर नही नही, इसबार कदापि नही" ) घर कैसे चलूंगी ? मेरे पास पहनने की जार्जिट की साडी तो है ही नही, इज्जत आबरू का सवाल है, और बजट मे इतने पैसे नही कि २५ रु० की साडी सिल्क स्टोर से खरीद लाऊं" ।

चैतन्य ने कहा 'वाह, वाह, समस्या भी कैसी महान है और यह देखो, हल भी कैसा आसान," और उसने मुस्कराते हुये कहा "अपनी छोटी वहन से माग लाना । वहा भी नही हो तो शाम को स्कूल मे एक नोटिस घुमा देना, एक दिन के लिये बढिया साडी उधार चाहिये, दर्जनो साडिया आ जायेगी और फिर एक चुन लेना ।' चैतन्य की बात सुनकर उसे कुछ परेशानी हुई पर वह उसके जिद्दी मिजाज से भी परिचित थी । उसने कहा, "अच्छा, कल मैं छोटी वहिन की अमुक साडी माग लाऊंगी ।" और दूसरे दिन पीले रंग की अति सुन्दर एक साड़ी सामने आगई, तब चैतन्य ने कहा, "सम्पत्ति की एक छोटा सी भौतिक दीवार गिर गई है, किन्तु नोटिस स्कूल में घूमता तो आनन्द कुछ और ही आता ।" वह बोली, "रहने दो ।"

प्रातःकाल ६ बजते ही चैतन्य और प्रियम्वा एक छोटे से काफिले के साथ दीवाली ढोकने के लिये अट्टालिकाओ की ओर चल पडे ।

मैं दरवाजे के बाहर निकले ही थे कि एक साप्ताहिकपत्र के वयोवृद्ध (वयोवृद्ध आयु से नही, बालो की सफेदी, बातो की गम्भीरता और कवित्त की प्रगतिवादिता से) संचालक संपादक की अट्टालिका पर चढ़ गये। बदकिस्मती से दोनो सीधे शयन कक्ष मे धुड धुड करते चले गये। यह आकस्मिक आक्रमण था। बेचारे सम्पादकजी कम्बल मे बडे सिटपिटा कर निकले। देखते, देखते कुर्ता, नही नही, जोगियो का चोगा पहन डाला, और बीच बीच मे सफाई भी पेश करते गये। जैसे तैसे हम लोग दरी पर बैठ गये पर प्रियम्बा से निगाह मिलते ही वे बोल उठे, "अहा, मेम साहब ने बडी कृपा की जो इतना कष्ट उठाकर यहां आई हैं। अरे आप दरी पर ही बैठ गई, नही, नही. ऊँचे गद्दे पर बैठिये, ऊंचे बैठिये।" चैतन्य ने कहा "क्यो क्या अग्रेज चले गये और मेम साहब छोड गये? घर की बहिनजी जल्दा मेम साहब कैसे बन गई।" और चैतन्य ने प्रियम्बा की ओर मुड कर कहा, "अवश्य ही यह साड़ी की करामात है। पर है तो यह मागी हुई। पर फिर भी मेम साहब की संज्ञा का कटाक्ष अनुचित नही।" सम्पादक महोदय की ओर देखते हुए चैतन्य ने कहा, "और आप तो खद्दरधारी सन्त है न? हम जैसे बाबू और बबूग्राउन के साथ कैसे निभाव होगा?" इस पर जरा कड़क कर सम्पादकजी ने कहा "जरा देखिये, खादी की बात को छोड़िये। यह नकली खद्दर है। सूत मील का, बुनाई हाथ की और बन गया यह मेरा बाना खद्दर का ताकि खद्दरधारियो मे मैं फिरगी न लगूं"। इतना सुनते सुनते तो महफिल दीवाली के मुजरे मे कहकहे, हंसी, कटाक्ष से पागल हो गई। क्षणभर के लिये चैतन्य ने सोचा, "हा, हा वह सब क्या है, नकली खद्दर और साडी के बीच भेद की दीवारें और असली खद्दर होती तो भेद की दीवारें और भी भयंकर होती क्योकि एक खद्दर की धोयती २० रुपये की आती जबकि नकली धोयती ७ रुपये की ही।"

अभी चैतन्य व्यर्थ की जिज्ञासा ही कर रहा था कि सम्पादकजी की

पत्नि भी आकर बैठ गई। बस नई राग छेड़ने के लिये एक नया यंत्र लग गया। किन्तु चिन्ता करने से पहले ही सम्पादकजी आगे बढ़ गये। वे बोले "यह दीवाली किसकी है? यह दीवाली अमीरो की, शोषको की, अभावग्रस्तों मे भेदभाव की और फिर हम लक्ष्मी की पूजा करे? आज के युग में लक्ष्मी का वह अर्वाचीन मूल्यांकन नही किया जा सकता है जिससे सम्पत्ति का ढेर लगाने की भावना को बल मिलता है। यह लक्ष्मी क्या सम्पत्ति पूजन, हर दीपक की लौ के साथ दुष्टजन पूजा करते है ताकि अगले वर्ष वह अधिक से अधिक सम्पत्ति के स्वामी बन सके और यह सम्पत्ति आखिर आती है शोषण से।" थोड़ा जोश मे आकर सम्पादकजी ने कहा "लानत है ऐसी लक्ष्मीपूजन पर। इसे [ पत्नि को ] कल समझाने के लिये मुझे घंटो लगे। पत्नि ने कहा कि लक्ष्मी का अपमान करने से वह हमसे रूठ जायेगी और फिर हमारी बर्बादी होगी। किन्तु यहां लक्ष्मी की रूठ की कौन पर्वाह करता है, हम अभाव मे भी आनन्द की कसक से वंचित न होने का सबक सीखना चाहते है।"

बेचारी बहिनजी किसी तरह ठिठकी सी बैठी रही, शायद अतिथियो के कारण उसको पतिद्रोह करने मे झिझक हो रही थी। किन्तु सम्पादकजी रुक नही सके वे आगे बढ गये 'यदि कोई आठ आने का खुशबूदार तैल लगा कर यहा आ बैठता है तो तुरन्त ही उसकी खुशबू हमको उससे अलग कर देगी। हमारे और उसके बीच भेद की एक दीवार बन गई और यही समाज का विष हैं। इसी प्रकार एक भाई धनी और दूसरा गरीब है तो भाई भाई का प्रेम कहा रहा? सम्पत्ति उनके बीच भेद की दीवारें बन गई और यही समाज का विष है। इसीलिये मैं कहता हू कि जातिया केवल दो ही है ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र नही, बल्कि अमीर और गरीब की। धन ही जाति की दीवार है और सब बातें गौण हैं।"

इतना सुन्दर प्रवचन सुनने के बाद चैतन्य से नही रहा गया। उसने कहा "आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। दो रोज पहले एक बड़े राज्याधिकारी (समाज सेवक भी) से मैंने टेलीफोन किया, 'पिछले वर्ष की भाति इस बार गन्दी बस्ती मे आप गरीबों की झोपडियो पर दीपावली को दीपक जलाने का श्रीगणेश (उद्घाटन) करें तो बडी कृपा होगी' वाक्य पूरा होते होते दूसरे किनारे से आवाज आई "अबकी बार तो मैं नही आ सकता हू क्योकि ........ ...फादर इज नाट होयर और दीपावली की शाम को मेरा घर रहना अनिवार्य है।" चैतन्य ने हसते हंसते धन्यवाद दिया और टेलीफोन धर दिया। उसके दिमाग मे भेद का एक कुचक्र चल पडा। उसने अपने आपसे कहा "दीपावली की सुबह मेरे दो लडको का देहान्त हो चुका था। एक ही दिन मे दो प्राणियो का नुकसान? किन्तु मेरी पत्नि ने मेरे साथ दीपावली की शाम को गन्दी बस्ती में दीपावली की खुशियां मनाई, घर घर दीप जलाये और मिठाइयां बाटी। इस खुशी मे सैकडो लोग शामिल हुये। क्यो ? क्या हमारे हृदय नही था पर पता नही हमको क्या घातक बीमारी लग गई। और इसीलिये कुछ सज्जनवृन्दो की निगाह मे शायद यह समाज–द्रोह या शोक–द्रोह का एक साहसिक कदम था। किन्तु पहले घर और पीछे पराया, यह भी जीवन का सिद्धान्त है और यदि उन महाशय ने गरीबो की झोपडियो के बदले अपने ही महलो और बगलो मे दीपावली की "अलख" ज्योति जलाने का निश्चय किया, तो क्या बुरा किया। कौन चाहता कि दीपावली की शाम को वह "लक्ष्मी देवी" की मिन्नतें करने से अपने आपको वंचित करें। इसीलिये तो इसे स्वाभाविक मानवीय कमजोरी समझकर अधिक ध्यान नही दिया।"

किन्तु सम्पादक जी की निगाहो में काजल कौन डाले, वे तो देखते ही काटने को दौडते हैं। वे समझते हैं, "हमारा देश धर्मप्राण युधिष्ठिर बन जाये जिसने कुत्ते के साथ भी भेद नही किया और उसे भी सदेह

स्वर्ग ले गये। हिमालय की शीत समाधि मे जब देवराज इन्द्र कुत्ते को स्वर्ग मे ले जाने को तैयार नही हुये तो युधिष्ठिर कहते है

धर्मराज धर्मप्राण अन्तर्यामी,
श्वान योनी, कर्म का स्वामी।
कहा भेद, कहां अभेद, देव,
कर्म गति अति सूक्ष्म सदैव ॥

कहां स्वर्ग, कहां मैं, योग
निरन्तर निर्जरा का सुयोग।
नतमस्तक देवराज देव भी
सत्य मे सीमित स्वर्ग भी ॥

किन्तु दूसरे ही क्षण चैतन्य ने सम्पादक जी से कहा, "देखिये, आप अपनी पत्नि और बच्चो की गन्दी बस्ती की झोपडियो मे ले जाइये फिर आपको भेद की दीवारें दिमाग से तोडने की आवश्यकता नही पड़ेगी। आपकी महनत स्वयं प्रकृति दे देगी।" किन्तु इस पर सम्पादकजी भडक उठे, बोले, "जनाब, आप जानते हैं, मैं भी कितनी कठिनाई से दिन काटता हू। आपकी तो एक निश्चित सरकारी आय है, इसलिये आंख बन्द करके आप पडे रहते हैं। किन्तु मैं तो... .. .. . मैं तो . ... .... आकाश की वदलियो की तरफ देखता रहता हू। बदली आती है और विना वरसे ही, वो देखो, चली जाती है। अखबारो का चन्दा नही आता, कभी विज्ञापन नही आता, खर्चा सब करना पडता है, फिर मेरे दिमाग मे निश्चिन्तता कहा?" इतना कह कर वह चैतन्य की ओर देखने लगे, मेम साहब को मिठाइया और पान खाने के लिये मजबूर करने लगे। इधर सब मडली खुशी से हसने लगी। हसी हसी मे ही चैतन्य ने अपने आप से पूछा, "मै इस समय कहा हू देव।" देव ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "वत्स, तुम इस समय सम्पादकजी की लगभग सौ रुपये माहवार की सरे बाजार खडी

अट्टालिका मे विराजमान हो। नीचे के चार छोटे कमरो मे अखबार के दफ्तर हैं, वहां ब्लाको के ढेर पड़े है तो कही, फाइलें, कुर्सियें, टेबिलें। ऊपर रसोई बन रही है और बराबर कमरे मे तुम जीवन के नये मूल्यो की परिभाषायें ढूंढ रहे हो। यहां भौतिक दृष्टि से जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें परिपूर्ण दृष्टिगत हैं, किन्तु मानसिक दृष्टि से चिन्ता की चिता जल रही है।" इसके बाद चैतन्य ने फिर पूछा, "देव बडी कृपा की किन्तु यह भी बताओ कि शामको मैं कहाँ बैठता हूं?" देव ने फिर मुस्करा कर कहा, "वत्स शाम को तुम चमारो, कोलियो, कुम्हारों और तेलियो के टूटे फूटे झोपडो मे अति आनन्द मे बैठते हो। कभी कभी तेज हवा चलती है और झोपडे को ही उखाड कर ले जाती है पर तुम चमारो के साथ आनन्द से बैठे रहते हो। कभी कभी घनघोर मूसलाधार वर्षा होती है और झोपडो मे पानी टपक टपक कर तुम सबको भिगो देता है, सब टूटा फूटा सामान भीग भीग कर कीचड़ हो जाता है, घुटनो तक पानी का दरिया बह चलती है किन्तु तुम सब चमारो के साथ आनन्द से बैठे बैठे अपना काम करते रहते हो। कभी कभी अति कठोर जाड़ा पडता है, तुम छोटे छोटे नग्न बच्चो के साथ ठिठके ठिठुरे पडे रहते हो। सर्दी से बचने के लिये तुम माचिस की सीखें जलाते हो, पर वे तुम्हे गर्म नही कर सकती। न तुम्हारे पास ओढने को कम्बल, रजाई है और न तुम्हारे पास बिछाने को गद्दा। अरे अरे, तुम पर भगवान भास्कर की भी कृपा नही। जगत को ताप देने वाले भास्कर! तुम भी इन झोपडियो मे मुंह फेर लेते हो। किन्तु फिर भी वत्स! सदियो के ढेर पर तुम आनन्द से अपनी झोपडी मे बैठे बैठे दरिद्रता, कगाली, अभिशाप, अविद्या, अज्ञान, बचपन आदि आदि का अट्टहास कर रहे हो। सचमुच तुम सभ्य समाज की रग रेलियो से दूर किन्तु मुक्त बैठे हो जब कि तुम्हारे सम्पादक अभिशप्त भेद की दीवारो की कालिख समाचार पत्रो के कालमो मे पोत रहे हैं।" इतना कह कर देव अन्तर्ध्यान हो गये।

चैतन्य को सम्पादकजी की कोठी पर बैठे एक घंटा हो चुका था। नीचे रिक्शेवाले की चांदी पक रही थी। किन्तु बुरी जगह जो आ फसे। किसी तरह भेद की दीवारों से पिंड छुड़ाया और काफिले के साथ दोनों आगे बढ़ गये ........ बंगलों में, सिविल लाइन्स में और न मालूम कहां, कहां, सभी जगह सोफे सैट, मुजरे, मिठाइयों, पान सुपारियों और मीठी बातों, कहकहों, वाह-वाहों, शहर के छोकरों की छेड़छाड़, पटाखों और उत्तर की तेज हवा से दीपक बुझने के सदमों से उनका इस्तकबाल किया गया। विशाल कोठियों के किसी भी माई के लाल ने नहीं पूछा, "दीन दरिद्रों, भिखारियों, वेश्याओं, चमारों, कोलियों, कुम्हारों, तेलियों आदि आदि के दीपकों का क्या हाल है? वहां सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी क्यों नहीं पहुंची? उनके बच्चों को मिठाइयां क्यों नहीं मिली? वहां अज्ञान और अभाव का अन्धकार दूर करने की फिक्र किसी को क्यों नहीं हुई?" उन्होंने समझा, भला इन प्रश्नों की जरूरत ही क्या है? इस आलीशान बंगले की गैलरी के चित्र में महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू से हंस हंस कर बातें कर रहे हैं.......... क्यों, भेद की दीवारों पर भला यह कैसा शृंगार?

:❀❀❀:

# हरि के बालक

वसन्त बहार की उस सुहावनी दोपहर को १२ बजे जैसे ही चैतन्य की साइकिल एक शानदार बंगले पर रुकी कि एक कारीगर ने चिल्लाकर कहा, "ठहर जाइये, यहीं ठहर जाइये।" क्षणभर के लिये वह स्तब्ध सा रह गया क्योंकि साइकिल पर तेज रफ्तार से जो चला आ रहा था किन्तु फिर भी कारीगर की पर्वाह किये बिना सहसा उसका हाथ फाटक की कुन्दी से ज्यों ही लगा कि वह फाटक खोलने का प्रयत्न करने लगा। इसका उसे ध्यान ही नहीं रहा कि आज्ञा का पालन करना है और भीतर जाने से रुक जाना है। तभी बंगले के अन्दर की ओर काम कर रहे चार पाच कारीगरों में से एक ने कहा "बाबूजी, अभी फाटक नहीं खुलेगा। आप देखिये, फाटक की धुरी को जमा कर चूना मिट्टी लगाया जा रहा है, इस पर उसने तुरन्त सतुलन कायम रखते हुये पूछा "अच्छा कितनी देर लगेगी ?" उत्तर मिला "यही कोई दस बीस मिनट" चैतन्य ने कहा "इतनी देर तक कैसे रुकूंगा ? मुझे तो साढे बारह बजे वापिस जाना है।" और इतना कह कर क्षणभर के लिये अवाक् सा खड़ा वह मार्ग मे दोहराई हुई प्रिय पंक्तियों को फिर मन ही मन बोलने लगा

मन रे परसि हरि के चरण।

सुभग शीतल कंवल कोमल

त्रिविध ज्वाला हरण।

जिन चरण प्रहलाद परसे

इन्द्र पदवी धरण॥ १ ॥

किन्तु बीच ही मे चैतन्य के मुंह से निकल पड़ा, "क्यो ? क्या अन्दर कोई लडके पढ रहे हैं ? मैं लडको से ही मिलने आया हू।" इस पर उसी गम्भीर कारीगर ने कहा "हा अभी तीन लडके अन्दर गये तो थे।" इतना कहते कहते न मालूम उसे क्या हुआ कि अपने साथियो से कहा, "अरे जरा सा फाटक खोल देता हू, ये बाबूजी अन्दर चले जायेंगे" और चैतन्य ने भी उसे प्रोत्साहन देते हुए कहा "हा...... हा ...... बिल्कुल जरासा फाटक खोलने से काम चल जायेगा। मैं कितना पतला दुबला जो हू।" कारीगर चैतन्य की बात पर मुस्करा दिया। थोड़ा सा फाटक बड़ी सावधानी से खुला और यह भी अपने पतले बदन को सर्पाकार मोडता हुआ बंगले के अन्दर आगया। पर अन्दर पाव रखते ही अधिकार की भावना तिरोहित होगई और स्नेह की सरिता मन मे बहने लगी। सचमुच कारीगर ने भी यही समझ कर फाटक खोला होगा कि बगले के अन्तरग से उसका घनिष्ट स्नेह है और "वह कोई अफलातूनी क्लर्क या सरकारी कर्मचारी नही है जो यदा कदा ऐसे बगलो मे चक्कर काटने के लिये आजाता है।" किन्तु यह सब प्रतिक्रियाये तो वह क्षणभर मे भूल गया और बगले के अन्तरंग मे प्रवेश करने से पूर्व बीस पचीस गज की दूरी मे वह फिर उसी पुरानी राग मे डूबने लगा।

जिन चरण ध्रुव अटल कीन्हें,
राख अपनी शरण।
जिन चरण प्रह्लाद भेट्यो,
नखसिखा सिरि धरण ॥ २ ॥
जिन चरण प्रभु परसि लीने,
तरी गोतम धरण।
जिन चरण कालीनाग नाथ्यो,
गोप लीला करण ॥ ३ ॥

यकायक सीढियो तक आते ही चैतन्य ने चौकीदार की ओर दृष्टि दौडाई। पर कोई बाहर नही था। फिर क्षणभर के लिये रुक गया। कुछ उपाय सोचने ही लगा। कि कानो मे मधुर आवाज आने लगी

रघुपति राघव राजा राम
पतित पावन सीता राम

और चैतन्य चौकीदार का इन्तजार किये बिना सीढियो पर चढकर दरवाजे के अन्दर चला गया। उसने देखा, "१५–२० बारह वर्ष से कम आयु के अबोध बालक पंक्तिबद्ध हाथ जोडे 'रघुपति राघव राजा राम' की धुन गा रहे हैं। सबके चेहरे झुके हुए थे, नेत्र भी झुके हुए थे, मन के छोटे मीठे उल्लास भी झुके हुये थे, जैसे सारा संसार हरि के चरणो मे नतमस्तक अर्चना कर रहा हो।" उसके नेत्र भी बरबस झुक गये, और वह अर्द्ध सुषुप्त दशा मे बच्चो की पंक्ति मे मौन खडा हो गया। किन्तु ज्योही सामने खाट पर बैठी बहिन की दृष्टि उस पर पडी तो वे चौंक कर खडी हो गई और शिष्टाचार की व्यवस्था निभाते हुये स्वयं भी बोलने लगी, "रघुपति राघव राजा राम"।

दो मिनट मे ही प्रार्थना समाप्त हो गई। चैतन्य भी इधर उधर की बातें करता हुआ कुर्सी पर बैठ गया। अपनी दृष्टि चारो ओर फैलाई—बरामदे से लेकर बाहर घास के लान तक दो दो चार चार की टुकड़ियो मे बधे छोटे छोटे बच्चे सलेटो मे क · क्··· का बारखडी लिख रहे थे और कभी जोर जोर से याद भी करते थे। पर फिर भी उस हरीभरी घास मे सूखे सूखे फटेहाल चेहरो, नन्ही नन्ही आखो और मुस्कराते हुये अधरो को देखकर उसे अपने अन्तरंग मे एक दबाव सा अनुभव होने लगा, "ये अभी तो '१५–२० 'कोकिले ही हैं, कही ऐसा न हो कि बगीचे के हर फूल के स्थान पर एक एक नन्हा मुन्ना बालक अपनी अपनी

सलेट पकडे इस बगले मे हरि के पुष्प लगादे। इसी बंगले का एक प्रिय पुष्प कुछ काल पहले मुरझा गया तो क्या हुआ, एक ही फूल तो मर कर कानन कुसुमा जाता है। वहिन की कोख मे अब एक नही अनेक बच्चे वात्सल्य प्रेम से ओतप्रोत होंगे।" यही सोच कर उसने कहा, "अब बच्चो की संख्या बढनी चाहिये। यह एक बहुत बडा कुटुम्ब बनना चाहिये।" किन्तु बहिनजी ने कहा, "नही, नही, अभी अधिक बच्चो को आने मे रोकना पडा है। गर्मी के दिन आरहे है, जगह जो नही है।" और इतना कहने के बाद बहिनजी ने अपना एक पहले का प्रश्न दोहराया, "पास ही के मन्दिर के लिये आपने कहा था न, क्या आपने उसमे जगह देखी ?" चैतन्य ने सहज भाव मे उत्तर दिया, "नही, आगे इतवारको देखू गा ?" किन्तु इसी समय उसे स्वयं अपने ही सुझाव पर मन ही मन कुछ खेद हुआ। उसने समझा, 'मन्दिर को भी क्या कोई बडा मन्दिर बनायेगा, खूबी तो इस बात मे है कि घर घर मन्दिर बन जाये, पर फिर क्षणभर मे ख्याल आया, यह भला कैसे सम्भव है ? स्वयं बहिनजी भी तो एक कोने की शीतल छाया मे पडी अपने जीवन के टूटे फूटे अतीत को भूलने का सघर्ष कर रही है। बच्चो की यह छोटी सी फुलवारी भी तो अपने ही बिछुडे प्रियजनो की स्मृति मे सुख के चाद लगाने के लिये है। ऐसी स्थिति मे यह कैसे हो सकता है कि बंगले का ड्राइग रूम, अन्य छोटे मोटे कमरे, दालान आदि आदि सरस्वती के महामन्दिर बन जायें और जब तक ऐसा नही होगा तब तक जीवन का अभियान असफल ही रहेगा।" किन्तु सहसा मन मे विचार आया, "इस बगले मे मानव नही महामानव, महामानव भी नही दिव्य मानव, नही, नही, दिव्य मानव भी नही देव, और हां देव भी नही महादेव बसता है। और उस महादेव को चार हाथ पाव जमीन के अतिरिक्त चाहिये ही क्या ? जो निज मे सबको और सबमे निज को देखता है, वह अन्तरंग मे ब्रह्माड के समान दीप्तिमान और व्याप्त होगा और उमे ईंट चूने मिट्टी से बने बंगले की भौतिक चार दीवारो का मोह

नही सता सकेगा। सचमुच उस महादेव के हृदय मे शिष्टाचार के कमरे या फिर स्नान, ध्यान, पूजा पाठ के अलग अलग भौतिक वर्ग नही रह सकेंगे और उसे तो स्वयं आगे बढकर दीवारो को चकनाचूर करना ही पडेगा। क्या आश्चर्य, क्षणभर मे शताब्दियो से पीडित और शोषित भौतिकवाद की दीवारें टूट कर चकनाचूर हो जायें और समाजवादी प्रागण मे विलीन हो जाये। तब तो वही महादेव एक एक बालक का हाथ पकड कर उसे बगले के कोने मे विराजमान करदेगा" और तब मैं भी चिहुक उठूंगा, "मेरे पडोसी, तुमने सुना। किसी समय युद्ध विजय के बिगुल सुने जाते थे, राजाओ के फरमान सुने जाते थे, पर आज तुमने सुना घर गृहस्थियो के घर बालको के मन्दिर बन गये है। वहा देखो, महादेव ने सबकुछ हरि चरणो मे न्योछावर कर दिया है और स्वयं दीन बन गये हैं। ऐसा भी त्याग या महात्याग जन जन के हृदय को राज बनता जा रहा है, क्योकि महादेव स्वयं पानी भरते हैं, स्वय प्याऊ लगाते हैं और स्वयं ही प्यासो को गंगामृत पिलाते है। सचमुच भारत भूमि धन्य हो रही है"।

पर यह सब विचार तो उस समय रंगीन दुनिया के स्वप्न की तरह लुप्त हो गये जब एक बालिका ने दूर घास पर एक छोटे लडके और लडकी को सलेट दबाये टहलते हुये देख कर कहा, "अरे बहिनजी, 'देखो देखो, ये दोनो मिया-बीबी क्या मजेमे घूम रहे हैं।" और जब बहिनजी समझाने लगी तो एक और लडके ने शिकयत की, "देखो.. ... देखो ... ... यह लडका मुझे बहिनजी बहिनजी कह रहा है।" अब बहिनजी इसे भी समझाने लगी तो एक और बुलबुल चहकने लगीं, "देखो बहिनजी, यह कल मुझे गाली दे रहा था।" पर इस बुलबुल समुदाय मे कोई कोई काम से काम रखने वाला बालक भी था जो इन सब शिकायतो के झमेलों से कोई वास्ता नही रखता था। बीच बीच मे ऐसा ही समझदार बालक सलेट लेकर चैतन्य से गणित का जोड भाग सही

करवाने के लिये आने लगा। चैतन्य को भी डर लगता था क्योंकि बचपने से ही यूक्लिड और गणित उसके लिये सर्प की फुफकार से कम नही थी। पर किसी तरह संकट टाला। ऐसा लगा जैसे यह मामूली संकट गुलाव के फूल के मामूली काटे मात्र ही हो। असली सुगन्धि से तो मन पहले से ही भरा पड़ा था। और इसीलिये चैतन्य को यह भी विचार आया कि सध्या पड़ते पडते वहिनजी की झोली मे शिकायती कांटों से लगे सैकडों अधखिले प्रसूनों का अम्बार लग जाता होगा, रात को वे सब फूल पिरोये जाते होंगे, निद्रा मे अनेक सुनहले स्वप्न मुखरते होंगे और दूसरे दिन जब वालक आते हैं तो वे सब फूलो के हार उनके गलों मे पहना दिये जाते होंगे। उसने समझा "यही तो प्राण है या प्राणो की सुरा, जिसका पान न करने वाला महामूर्ख जड़वत् है और निश्चय ही धन्य है वह वहिन जो इन प्राणो को सजो संजो कर पुष्पहार वना रही है।

अभी साढे वारह वजने ही वाले थे कि चैतन्य ने विनम्र भाव से वहिनजी से विदा ली। किन्तु वंगले के फाटक से वाहर आते आते उसे कुछ ऐसा लगा कि वह अन्दर अपनी कोई अमूल्य चीज भूल आया है। पर अब क्या हो सकता है, पीछे मुड़कर लाने का भी तो साहस नही है। किसी तरह फाटक से निकलते ही मित्र ने पूछा, "कैसे खोये से हो रहे हो, सलाम का जवाव भी नही।" चैतन्य ने सम्भलते हुये कहा, "अरे तुम तो मेरी आदत जानते ही हो। पास के वगले मे मैं अपनी कोई अमूल्य चीज भूल आया। वस इसी से ध्यान वंट गया था।" इस पर मित्र ने कहा, "यह भी वडी दुविधा की बात ठहरी, तुम जाकर ले क्यों नही आते?" चैतन्य ने अपना अन्तर छिपाते हुये कहा, "तुम आगे अपने कामसे जाओ, मेरी जिन्दगी का मसला तो ऐसे ही चला करता है।" और वह मित्र आगे वढ गया। पर उसे क्या पता था कि चैतन्य का अमूल्य हृदय भूल मे उस वगले मे रह गया था और उसे वापिस

लाने की शक्ति किसी में भी नहीं। पर अब सोचविचार करने से होता ही क्या है ? अन्धे को एक लकड़ी मिल जाये तो भी काम चल ही जाता है। इसीलिये लकड़ी का सहारा लेते लेते चैतन्य सहसा मीरा के मन्दिर मे चला गया।

जिन चरण गोवरधन धारयो,
गर्व मघवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर
अगम तारण तरण ॥ ४ ॥

# नाश के परे
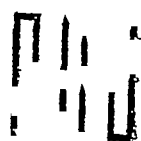
सहसा सेशन जज साहब के मुँह से निकल पड़ा, "देखो, हम लोग काम के बोझ से दबे रहते हैं, और ऊपर हाई कोर्ट की डाट से भी परेशान रहते हैं। इस समय भी मेरे पास डेढ़ सौ केस तलाक के हैं। औरतें कहती हैं, पति "इमपोर्टेंट" है और पति कहते हैं, पत्निया सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य। और जब उनका मेडिकल टेस्ट होता है तो डाक्टर लोग भी आपस मे मिल जाते हैं, सचाई का पता ही नही चलता। और यदि किसी का मामला सच्चा भी होता है तो पूरा "एविडेंस" नही मिलता। अतः मुकदमा खारिज कर दिया जाता है"।

एक अजीब सी लहर मे न्यायाधीश महोदय ने अपनी बात जारी रखते हुये कहा, "हा ...... हा इसी तरह सैंकडो मामले जमी जायदाद के, लेनदेन के, हत्या, कत्ल, लूटमार आदि आदि के भरे पड़े हैं और इन सबमे हमको बडी फुर्ति से काम करना पड़ता है।" पर अभी जज साहब अपनी बात का निष्कर्ष ही निकालना चाहते थे कि सहसा मेरे मुह से ......निकल पडा, "आप मेरे पिताजी से मुलाकात करेंगे? आप जानते तो नही होंगे"?

और सहसा एक सहमी सी नतमस्तक लज्जा के साथ न्यायाधीश ने कहा, "हा, हा, मैं जानता हू। आप की जायदाद का फैसला जो मेरे पास था। और फैसले के कई दिन बाद उस वकील ने मुझे बता जो दिया था"। मैंने तुरन्त कह दिया, "यह भी अच्छा हुआ कि फैसला करने के बाद आपको मालुम हुआ, नही तो कही आप अप्रत्यक्ष प्रभाव

के चक्कर या संकट में पड सकते थे। देखो, दस दिन पहले ही जब मेरी बहिन का एक मामला आपकी सेवा मे आया तो आपने मुकदमे से अधिक मेरा ध्यान किया और इसीलिये तो आप मेरे विद्यालय के वार्षिक उत्सव मे भी लोकलाज के भय से नही आये।" इतना सुनते सुनते जज साहब को कुछ परेशानी होने लगी पर उनका हार्दिक प्रेम कम नही, बल्कि सरिता के समान उमडता हुआ ही मेरी ओर आने लगा। मैंने हृदय मे वेदना और शर्म का अनुभव किया और बाद मे यह भी सोचा कि आवश्यकता से अधिक स्पष्ट होना कोई अच्छी बात नही है।

किन्तु मैं इस मौके पर अपनी आदत से बाज नही आ सका और न्यायाधीश की तराजू मे से सत्य मूलमंत्र खोज निकालना चाहता था। इसीलिये थोडा सकुचाता हुआ सा बोल उठा, "भला आप लोगो से सत्य न्याय कैसे सभव होता होगा" ?

तुरन्त ही जज साहब ने मुस्कराते हुये फिर दोहरा दिया, "हम तो काम के बोझ से दबे रहते हैं। हमे सदा झगडो को निपटाने की पडी रहती है। पर अदालत के मामले भी ऐसे विकट उलझन भरे होते हैं कि पक्ष और प्रतिपक्ष की कीचड धूल में से अनेक बार हमे अपना मार्ग दिखाई देना कठिन होता है—अनेकबार पूर्णरूप से असंभव हो। ऐसे मौको पर हम, ताश के पत्ते फेंकते हैं, जिसके भाग्य मे जो कुछ बदा होता है उसे मिल जाता है और हमारा संकट भी टल जाता है।"

जज साहब की स्पष्टोक्ति सुनकर ड्राइंगरूम मे बैठे हम अब चौंक पडे। सहसा एक प्रतिक्रिया से मन विक्षुब्ध होगया। दिनभर की चक्की पीसने के बाद मुझे ऐसा मालूम हुआ, "महात्मा गाधी और विक्रमादित्य के भारत में जन्म लेने वाला "मैं" सभवतः ऐसे अद्भुत वाक्य सुनने के लिये तैयार नही था। मेरे सामने न्याय सदैव ही तराजू के पलडे की भांति लटकता हुआ स्वर्ग का भय रहा है और इसीलिये जब कभी मै सत्य........न्याय........धर्म....... आदि की बात सुनता हू तो मेरे कान

खड़े हो जाते है, रोगटे कांपने लगते हैं,........और........मैं........समझता ....हूं, किसी ने किसी का माल-लूट लिया तो उसे सजा होगी ही, किसी ने किसी को मार दिया तो उसे फासी होगी ही और किसी ने किसी को धोखा दिया, कानून की अवहेलना की, अनाचार और अत्याचार किया तो वह सजा का भागी अवश्य होगा ही। इसीलिये जब किसी ने मुझे दो विल्लियो और एक वन्दर की कथा सुनाई तो बात अधिक अटपटी नही लगी क्योकि यहा न्यायाधीश विवेक, वुद्धि और चरित्र का ठेकेदार मानव नही वल्कि बन्दर था। जव वन्दरराज ही न्यायाधीश बन जायें तो फिर बिल्लियो के भाग का छीका भी आगन मे टूटकर चकनाचूर क्यो नही हो जाये? और इसीलिये यदि बन्दरदेव ने प्रत्येक भारी पलडे मे से रोटी का टुकडा काट काट कर मु ह मे दवा लिया और अन्तिम टुकडा अपनी मेहनत का फल मान कर, तराजू के पलडो को तोड मरोड कर, छलांग मारता हुआ पेड की डाल पर उछल कर जा बैठा तो आश्चर्य की क्या वात है" ?

ऐसी मनोभावना की दशा मे मैं केवल ताश के पत्तो के विचार से ही परेशान नही था, न ही मैं आदर्शवाद की कसौटी पर खरे उतरने वाले सोने की चमक से परेशान! कारण स्पष्ट है। मैं भी तो "ताश के पत्तो" का शिकार हो चुका था और इसीलिये कुछ दिन पहले जव एक नाती को गम के आसू वहाते हुये तीन दिन होगये तो मैंने कहा, "देव, जड भूमि के लिये इतना मोह और दुख क्यों? अपना तो यह शरीर भी नही है, यह भी काल की अवधि के वाद राख का ढेर हो जायेगा, फिर आप क्यो मुकदमा खारिज हो जाने से परेशान हैं? मैं जानता था कि आप सत्य पर ही लडते हैं, और जिसके कुटुम्ब ने अपना सबकुछ समाज के चरणो मे न्यौछावर कर दिया है, वह क्या कभी झू ठा मामला भी अदालत में लड़ सकता है? किन्तु न्याय के कान होते हैं, हां........ हा........वड़े वड़े हाथी के कान, किन्तु आखे नही? और यदि कही धूल

मे उसे आखें भी मिल जाये तो फिर "आत्मा" का तो अभाव ही रहता है। अदालत के कठघरे की चार दीवारी मे तर्क वितर्क, बहस मुआयसा, वकीलो को चौंच भिडन्त और हाकिमो की कलम नवीसी, झूठ को सच और सच को झूठ प्रमाणित करने के अलावा और क्या रह जाता है ? इसीलिये आप ऐसी नगन्य बात पर क्यो परेशान होते हैं ?"

किन्तु मेरे नाती ने दुख को दुख ही समझा और बोल उठे, "हम बिल्कुल सच्चे हैं, दूसरे पक्ष ने न्याय की कुर्सी को अनैतिक तरीके से प्रभावित किया है, नही तो इतना स्पष्ट मामला, वकीलो के आश्चर्य की सीमा ही नही, क्योकर खारिज हो सकता है ?"

पर आज तो प्रत्यक्ष ही न्याय की उस मूर्त्ति से घुलघुल कर साक्षात-हो रहा था और न्याय की वही विक्रमादित्य को लजाने वाली ब्रिटिश कालीन परम्परा की शक्ति सामने थी। अभी बात चल ही रही थी कि न्यायमूर्त्ति ने कहा, "आपको ऐसा जूनियर वकील नही रखना चाहिये था। सीनियर और नामवर वकील का भी बड़ा असर पड़ता है। हम लोग भी उसके प्रभाव मे आजाते हैं !" किन्तु मैंने उत्तर दिया "वाह, यह भी खूब रही ? भारत के कगाल हम बडे वकील को कैसे रख सकते है ? हमारे पास तो देने को चार कौडी भी नही है। मौजूदा वकील को भी तो हमने कुछ नही परखा है।" इस पर जज साहब ने अपनी स्थिति साफ करते हुये कहा, "आपकी हजारो की जायदाद का मामला था इतना तो करना ही चाहिये था।"

जजसाहब तो कह गये किन्तु मेरे मन पर आज भी एक प्रतिक्रिया जागृत हो रही है। अहा, देव, यह भी कैसी विडम्बना, सत्य का प्रभाव नही किन्तु वकीलो का तर्क और बवंडर न्याय की आख मे धूल झोकने के लिये अनिवार्य है। निश्चय ही ऐसा मालूम देता है कि पाप का एक "ढेर इकट्ठा होता जा रहा है और अन्याय और अत्याचार की संदिग्ध

बदबू से सारा जहान तड़फ रहा है किन्तु न्याय के सिंहासन पर आसीन कलियुगी, विक्रमादित्य कहता जा रहा है, "मैं प्रभावमुक्त हूं, मैं सत्यप्रिय हूं, मैं न्यायकर्त्ता, नीरक्षीर विवेक बुद्धि, समाज का प्रथम और अन्तिम व्यक्ति हूं और प्रजातन्त्र और शासनतन्त्र की सत्ता जहां समाप्त होती है, वहीं से मेरी सत्ता और शक्ति का सूत्रपात आरम्भ होकर सीधे देवलोक तक जाता है।" इतने ही मे एक अभियुक्त चोर की तरह मेरे कमरे मे घुस आया और जैसे ही न्यायमूर्ति ने उससे चार आंखें की तो मुंह फेर लिया। मैं हृदय के गहनभाव को समझ गया। क्यो ? प्रियजनो की सिफारिश का प्रश्न ही नही, न्याय की सूली पर चढने मे भी आत्म-गौरव है, किन्तु जिस महान् देवता ने घृणा से अभियुक्त की ओर से मुंह फेर लिया, उसने अपने हृदय के अन्तस्तल के प्रांगण मे भी देखने का साहस किया है या नही ? मैं समझता हूं, उसने हृदय के प्रांगण में बिखरे हुये रंगो की होली से अपने आपको चुपके मे रंग लिया है, तभी तो उसके हाथो से कभी ताश के पत्ते छूटते हैं, कभी मुंह से 'एवीडेन्स', की कमिया, और कभी आत्मा से अनात्मा के प्रवचन।

सहसा मेरा ध्यान अन्तरिक्ष मे छिपते हुये सूर्य की तरफ एकटक हो गया। मैंने देखा, "विश्व का नियन्ता अन्तरिक्ष के अन्तिम छोर पर छिपता ही चला जा रहा है। वह अपने जीवन की अन्तिम शव—यात्रा में रो रो कर लालसुर्ख होगया है केवल इसलिये कि अब महा अन्धकार का साम्राज्य छाने वाला है। देव सूर्य के छिपने पर ही तो विश्व मे रजनी तारो की चादर ओढे आयेगी, और तभी दुन्दुभी वजाई गई कि अन्धकार का प्रत्येक सितारा एक एक न्यायाधीश बन गया है! पर ऐसे असंख्यात सितारे टिमक टिमक तो करते है, झिलमिल झिलमिल भी लहराते हैं, किन्तु उनमे एक भी ऐसा महारथी नहीं है जो देव सूर्य की तरह सारे संसार को प्रकाश विभोर करदे।" मेरा मन पीडा से घबरा गया और मैंने अन्तिम बार रजनी के सितारो से कहा, "देख लिया तुम्हारे प्रकाश को, यह लो, तुम्हें अन्तिम नमस्कार ?"

# जब सृजन अपना मुख खोलता है,
# तो शैतान का मुख बन्द होजाता है।

उस दिन जब वह अपने झुन्ड के साथ गन्दी बस्तियो की ओर सैकड़ो बच्चे बच्चियो को पढाने के लिये जा रहा था तो मार्ग में एक रसीले महाशय नें टोक लिया, "देखो, काम तो बडा अच्छा कर रहे हो, किन्तु लोगों की कुदृष्टि भी पडने लग गई हैं। कुछ बिगडे दिल तुम्हारे काम की उन्नति से कुढ रहे हैं। जरा सावधान रहना"। उसके पास उत्तर देने का अधिक समय नही था फिर भी चलते चलते उसने इतना ही कहा, "आंधी और तूफान बडे बडे वृक्षो को जमीन पर गिरा देते है, किन्तु अति सुकोमल छोटे छोटे पौधो का कुछ भी नही बिगडता है। उनकी आंधी का तूफान मेरी झुकी हुई गर्दन पर होकर निकल जायेगा और मेरा कुछ भी नही बिगड़ेगा"। वह आगे बढ गया किन्तु अनजाने ही एक चेतावनी उसके मन को धोखे मे डाल रही थी। इसी उधेडबुन मे उसे कुछ शब्द याद आगये, "जब सृजन अपना मुख खोलता है, तो शैतान का मुख बन्द हो जाता है, अत: जो कुछ करो सृजन की दृष्टि से ही करो। जीवन की गति के कदम पर बुनियाद की ईंटें रखते जाओ। संस्कृति के भवनो का निर्माण ऐसे ही होता है। जीवन की ये ईंटें अपने आप इमारतें बन जाती हैं।"

किन्तु ऐसा कौन भाग्यशाली है जिसे अपनी मन पसन्द का सृजन मिल जाता है। समस्त संसार का वैभव एक ओर धरा रहता है किन्तु सृजन का अभाव जीवन की गति को कलुषित कर देता है। सिकन्दर को जीवन भर अपनी मन पसन्द का सृजन नही मिला तो अन्त समय मे

उसने कहा, "ओह, क्या ही अच्छा होता कि इस विशाल साम्राज्य के बजाय यदि मैं एक किताब लिखता और अपनी आत्मा का कुछ अमरत्व यहां छोड जाता। यह साम्राज्य तो क्षणभंगुर है, स्वयं भगवान और मेरी आत्मा के शौर्य को भी बदनाम करने वाला"। किन्तु अफसोस, रोम के तीसमारखां लोगों मे से कोई भी सिकन्दर की इस आर्तवाणी को सुनना नही चाहता था। वास्तव मे सृजन एक दिव्य प्रवाह है— आत्मा की अपनी बाढ है, ऐसी बाढ जो जीवन के किनारो की सारी गन्दगी, सारे झाड झंखाडो को साफ करदे।

किन्तु वस्तुतः जब वह गन्दी बस्ती के हृदय में पहुच गया तो अचानक शैतान ने अपना मुंह खोल दिया। एक सरपंच ने समीप आकर उसका हाथ पकडते हुये संवेदना से कहा "देखोजी, अच्छे काम को कोई नही देखता है। कल अमुक राजनैतिक पार्टी के कुछ लोगो ने यहां के कुछ लोगो के साथ गुप्त मंत्रणा की थी और वे चाहते हैं कि आपका प्रभाव इस क्षेत्र मे समाप्त हो जाये। आपके यहा बच्चो मे शिक्षात्मक जागृति फैलाने से उनको राजनैतिक क्षति होती है। अत· अच्छा यही है कि आप यहा की पंचायत से इजाजत लेकर यह कार्य करें।"

वह सरपंच की बातचीत और सुझाव सुनकर एकदम स्तब्ध हो गया। यह भी कैसी विडम्बना है कि वह किसी निरक्षर को पढावे और पंचायत से उसकी इजाजत ले। क्या किसी रोगी को दवा देने से पहले डाक्टर पचायत मे राय लेता है? फिर उसकी भी अपनी एक निराली कार्य पद्धति है जिसमे ईश्वर के अतिरिक्त किसी से भी इजाजत लेने की आवश्यकता नही रहती। उसने अपने हृदय मे सोचा, "मर्त्य मानव, मुझे तेरे प्रमाद पर हसी आती है। तू मुझे इजाजत देने वाला अंकुश है ही कौन? मेरी अपनी एक निजत्व की सत्ता है जिसके अधीन सभी प्रेमपात्र अमृत से भरे हैं। सब ही मेरे बन्धु हैं और सभी बालक मेरी सन्तानें।

और मै किसी की इजाजत लेकर बन्धु बान्धव बनने के लिये थोड़े ही आया हूं। मैं तो अपनी मौज का धनी हूं, अपनी हवा का रुख हूं और अपनी लहरों का कम्पन हूं। मैं अपनी ही आत्मा का अन्तरंग हूं और अपनी ही ध्वनि को प्रतिध्वनि हूं। मैं मानवता की संज्ञा को एक क्षुद्र-प्राणी अपने ही प्रकाश को मार्ग बना कर चल रहा हूं, तुम्हें यदि पसद है तो अर्चना मे सम्मिलित हो जाओ अन्यथा मेरे सामने से हट जाओ।" किन्तु उसने व्यवहारिक नीति का सहारा लेते हुये कहा, "पटेलजी, आपही पंचो को इजाजत ले लेना। भला झंझटो मे पड़ने से क्या काम ?" और वह आम्र पल्लवो को चीरती हुई वसन्त समीर की भाति निर्बाध आगे बढ गया।

किन्तु पचायतें लगती रही, योजनायें तैयार होती रही और उसके पास पैगाम जाते रहे, "देखो, लडकियो और महिलाओ के झुण्ड मे तुम कभी बदनाम न हो जाओ। हमारी इजाजत से काम करो नही तो खतरा उठाओगे।" सचमुच शैतान का मुंह सदा ही खुला मुर्राह रहा है और वह भी कह देता है, "निर्माण की शक्तियां दैविक ज्योत्सना का प्रदीप्त सूर्य है जो अनन्त प्रकाश रश्मियो के साथ नन्हो नन्ही अछूत बालिकाओ के अधरो पर मुस्करा रहा है। प्रत्येक बालक बालिका की मुस्कान मेरे लिये आज्ञा पत्र है।" उसे यौवन के सुषुप्त भोर मे जैसे कोई सुना रहा हो, "तुम्हारे भीतर जो तुम्हे कभी कभी रेगिस्तान नजर आ जाता है वह रेगिस्तान नही बल्कि अपने गर्भ मे अजस्र नदी को छिपाये तुम्हारे दिल की वह कुवारी जमीन है जिसका प्रत्येक करण सहस्र सहस्र फलो मे फलीभूत होना चाहता है। इच्छा शक्ति से सृजन की इस नदी को खोदो और सीच दो इस सृजनातुर जमीन को। याद रखो, दिल की इस खेती से बड़ी दुनिया मे और कोई सम्पत्ति नही है।"

# आकाश किस पर टिका है?

जज साहब ने रिक्शे वाले को अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचने से पहले ही अठन्नी देते हुए कहा, "यह लो तुम्हारी मजदूरी, मेरी आदत पहले ही पैसे देने की है"। हमारे बीच क्षणिक सी मुस्कराहट फैली, थोड़ा व्यंग विनोद का समा जमा, किन्तु दूसरे ही क्षण हवा से बातें करते हुये हम रिक्शे में उड चले।

हमारे सामने का रास्ता सपाट था, मन के द्वार भी सब खुले थे; आगे पीछे बाधा नही थी, संध्या कालीन ठंडी ठडी हवा वक्त मे रंगीनी का समा जोड रही थी, सामने अरुणाचल की क्षितिज लीला मे सूर्य अपनी प्रखर-प्रखर स्पन्दित लीलाओ के साथ मुक्त पक्षी की भाति लीन होता हुआ विचर रहा था कि सहसा जज साहब बोल उठे, "यह देखो, यह आसमान किस पर टिका हुआ है? इसके खम्भे तो हैं ही नही? इतना बडा आसमान बिना किसी सहारे के कैसे टिका हुआ है?" क्षण भर के लिये भौतिक व्याधियो के वितान बुनने वाला मेरा दिमाग चकित सा हुआ। मैने सोचा, "क्या प्रश्न और क्या उत्तर? आकाश और खम्भे, किस पर अम्बर टिका है, किस पर अम्बर टिका नही है, फिर गिर क्यों नही पड़ता है।" दिनरात आखो के सामने बिखरे पडे ऐसे दार्शनिक प्रश्नो का उत्तर खोजने मे कुछ समय तो लगता ही है, फिर बात यह भी है कि आजके जड प्रधान युग मे इस प्रकार की चिन्ताओ मे कौन पडता है? पर उत्तर खोजने का प्रयत्न करने से पूर्व ही जज साहब पुनः बोल उठे "और यह देखो, पृथ्वी किस पर टिकी हुई है कौन है उसका सहारा? यह क्यो नही धरातल मे समा जाती है? कौन है इसको थामने

वाला कर्णधार ?" पुनः प्रश्न हुआ और जड़-प्रधान मेरे मस्तिष्क मे शंका की सरिता वहने लगी। मैने क्षणभर मे ही सहस्रादि वर्षों के उलझे हुये प्रश्नों को रेत की मुट्ठी उठाकर जैसे हल करने की कोशिश की हो पर सब व्यर्थ। बुद्धि के सामने, अंधकार की परतें पड़ी हुई थी, जो जीवन सामने के चौराहे पर भी मोड खाकर चल पडने का साहस न कर सकता हो वह भला यह कैसे पता लगा सकेगा कि पृथ्वी किस पर टिकी हुई थी। पर प्रश्न तो प्रश्न होता ही है, उसका भी एक गुरुत्तर रूप होता है, और चाहे कोई अर्थ निकले, या न निकले, हमे प्रश्न का उत्तर खोजने का भार सहन करना ही पड़ता है। किन्तु फिर बदलते हुये क्षणों में मेरा इन्तजार किये बिना जज साहब बोल उठे, "और यह आकर्षण की शक्ति भी देखो। सारा संसार अपने नियमित क्रम से बधा हुआ चल रहा है। यदि इस भौतिक और प्राकृतिक आकर्षण क्रम मे रंच मात्र भी बाधा पड जाये तो प्रलय हो जायेगा और मनुष्य का कही नाम निशान भी न रह जायेगा।"

अन्तिम प्रश्न अपने आपमे अपना उत्तर भी है। अवश्य ही कौनसा वैज्ञानिक इस सत्य से जूझ सकता है कि विश्व की संचालक शक्ति के इस आकर्षण का गतिक्रम बिगडते ही सारा संसार क्षण भगुर प्रलयकारी विनाश लीला का शिकार न हो जायेगा ?

किन्तु फिर प्रश्न हुआ, "और कौन है, विश्व की संचालक शक्ति का रहस्य।" जिस सरलता से प्रश्न हुआ उसी सरलता से उत्तर भी मिला, "क्या यह सब ईश्वर की सत्ता को प्रगट नही करते। इस सबका संचालक ईश्वर ही तो है। और इस सब नाटकीय क्रीडा मे मनुष्य का अस्तित्व ही क्या है ? पर फिर भी उसमे अहंकार का बीज सदैव अंकुरित रहता है और वह यही कहता कहता जीता-मरता है कि यह सब मेरा है ! उसका अपना निज का शरीर ही नही है, फिर भी वह अपनत्व और निजत्व का विसर्जन करने मे असमर्थ है।"

मैं प्रश्नो और उत्तरो की समीक्षा को ध्यानपूर्वक समझ रहा था। कभी कभी मार्ग मे चलते हुये राहगीरो की ओर भी दृष्टिपात कर लेता था, कभी कभी यह भी शंका कर लेता था कि कही गरीब रिक्शाचालक भी हमारे इन गहन प्रश्नो के उत्तर दिमाग मे न टटोलने लग जायें। भय से मेरा दिल काप जाता था, क्योकि रिक्शाचालक की जरासी भूल से भीड भाड से भरे हुये बाजारो मे दुर्घटना होते देर नही लग सकती थी। पर यह हमारी खुशकिस्मती ही थी कि रिक्शाचालक हमारे दिमाग की परेशानियो से बेखबर था।

हमारा रिक्शा तेजी से गन्दी बस्ती के नोक पर रुक गया। हम उत्तर कर अन्दर गये। बीच बीच मे तंग गली–कूंचो मे इधर–उधर बिखरे कीचड मे बचते–बचाते हम पहुच गये–पर्दा–नशीन औरतो के कुनबे मे। तुरन्त ही मैंने कहा, "यह देखो जज साहब, जौहरा इस अंधेरी और गन्दी कोठरी मे बैठी जीवन के अन्तिम क्षण गिन रही है।" मैंने पुनः कहा, "कई वर्षो से यह २० वर्षीय युवा स्त्री असहाय अवस्था मे टी. बी. की शिकार पडी है और यह सामने उसका पति भी टी. बी. की बीमारी मे पडा है।" अभी हमने पलके भी नही झपकी थी कि दूसरी ओर से चीत्कार आई, "और जरा मुझे भी देख जाओ डाक्टर साहब।" मैंने कहा, "जज साहब, इसके पाव मे टी. बी. का फोडा है, वर्षो से सड रही है, कोई इलाज कराने वाला नही है। मालूम होता है यो ही सडती सडती चली जायेगी"। अभी हमारी बात चल ही रही थी कि दायी ओर से एक और बीमार चिल्ला उठा, "गरीबपरवर, जरा मुझे भी देख जाइये। यदि आप मुझे ठीक कर देंगे तो सैंकडो बीमार आपके चरणो मे पडे रहेंगे। मुझे भी आप जिन्दगी बख्शो"।

इन बीमारो की हृदय विदारक कहानी अपनी आंखो से देख कर जज साहब भी द्रवित हुये बिना न रहे। पर यहां तो पहाड के पत्थरों

को तरह पडे, एक के ऊपर एक, बीमार ही बीमार, महारोग की अर्चना मे जीवन के अन्तिम क्षण गिन रहे थे। शताब्दियो से प्रतिपीडित मानव देहधारी कीट-पतंगो की ओर आज तक किसी ने भी दया दृष्टि नही डाली। एक एक दृष्टि के साथ प्रश्नो की सीमाये आर पार होने लगी और सहसा मैं अपने आपसे पूछने लगा "किसने इनकी ऐसी दुर्दशा कर रखी है?" और जब मैं अपने आपसे यह प्रश्न करता था तो मैं कभी जज साहब की हृदय की खिडकी मे झांकता तो कभी सामने के उस देव-प्रासाद की ओर जिसमे कल्पवृक्ष की गरिमा से सज्जित हरित-कानन इन्द्र की लीला-पुरी को भी लजा रहा था, जिसमे मधु-रंजित पुष्पो की केसर को चूमने के लिये तितलियो की झरपटें, रगीन-लालियो और इन्द्र-धनुप की अजलियो मे फूल सी महकती हुई कामिनियां रूप और स्वर्ण से लदी मदमाती-मदमाती फिर रही थी और जब कभी उनको ताम्बूल पत्र का पीप मुखारविन्द से थूकने की इच्छा होती थी तो "मानव देह धारी" गन्दी बस्तियो के कीट पतगे अपना मुख-खोल कर उसको सहर्ष धारण कर लेते थे। मैंने पुन: हृदय मे प्रश्न किया "देव यह सब क्या पहेली है, एक ओर स्वर्ग की सुषमा और दूसरी ओर नारकीय पीडा। महादेव, इन प्रश्नो की विभीषिकाओ मे तुम्ही बताओ, कहा तो आकाश को टिकाने वाले खम्भे मिलेगे, कहा पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग और कहा आकर्षण-शक्ति के ओर-छोर? ईश्वर को खोजने वाला कहा भटक गया, प्रभू?"

पर इसी बीच मे अधकार ही चला था और वीणा के मृदु-तार आनन्दघन मे जीवन का स्पन्दन छेड रहे थे

किसी काल के ये पथिक
कचन-कामिनि के मग मे
विसर गये क्या निज तुमको
अपने ही उर के प्राणन में।

# पागल कौन ?

मंत्रीजी अपने सरकारी बंगले मे से कपडे पहन कर बाहर निकले ही रहे थे कि उनके छोटे बच्चे ने धोयती का पल्ला पकडते हुये पूछा, "पिताजी, कहा जा रहे हो ?" मत्रीजी ने उत्तर दिया, "बेटा, शफाखाने जा रहा हू" । किन्तु बच्चा असन्तुष्ट रहा और उसने पुनः पूछा, "कौन से शफाखाने जा रहे हो ?" मत्रीजी ने बाध्य होकर सकुचाते हुये कहा, "बेटा, पागलखाने जा रहा हू ।" बात यहा समाप्त होगई और कुछ ही मिनटो मे मत्रीजी की मोटर मानसिक चिकित्सालय के दरवाजे पर आकर खडी होगई । तुरन्त ही मंत्रीजी मच पर आसीन होगये और अपनी बारी आने पर बोलने लगे, "आज की इस मनचली दुनिया मे काम, क्रोध, लोभ, मोह की जटिलता मे यह असम्भव हैं कि पागलो की संख्या मे वृद्धि न हो । इधर मनकी वासनायें बढती जारही है; उधर जीवन की भौतिक आवश्यकतायें, फिर क्यो न सारा संसार ही एक बडा पागलखाना बन जाय ?" किन्तु बात यही समाप्त नही हुई ।

एक के बाद एक, लम्बी चौड़ी बकवासें चलती रही । एक उठने लगा तो दूसरा बोलने लगा, "किसी जमाने मे इन पागलो को जंजीरो से जकड़ कर कैदियो की तरह रखा जाता था, कोढे मारे जाते थे, किन्तु आज तो वैज्ञानिक काया पलट होगई है । आज सब पागल अपने अपने कमरे मे बडे आराम के साथ पलग पर रखे जाते हैं" तभी एक पागल बीमार अपनी खिडकी मे से चिल्लाया "देखिये जनाब, अब ब्रोमाइड पिलाकर पागलो को नशे मे सुन्न पड़ा रखने का जमाना गया," किन्तु अभी वाक्य पूरा हुआ ही था कि पचास आदमियो के पीछे एक डढियल चश्मुद्दीन

चीख उठा, "हां, हां, अब विजली के शाक लगा कर हमको मार दो, हमको रिश्तेदारों से न मिलने दो, हमको तालो मे और सीकचों मे जकड़ कर रखलो और फिर कहते हो कि पागलो को बड़े आराम से रखा जाता है और क्रोमाइट से सुन्न नही किया जाता है। जंगली कही के तुम सब, हमे पागल बताते हो। पागल तो तुम सफेदपोश हो जो सुबह से शाम तक माया मरीचिका के धोखो से भोले भालो को मारा करते हो, झूंठ और पाप की ठगी से लूट लूट कर अपने घर भरते रहते हो और अब जैसे अपना मनोरजन करने के लिये आये हो हमारे पास, चले जाओ, यहा से, नही तो.... ....... ..........''और अभी उसकी लाल अंगारे सी दहकती आखें अग्नि की वर्षा करना ही चाहती थी कि किसी ने कहा, "यह लो, नारंगी, टमाटर," और क्षणभर मे ही पागल सयाना बन गया।

किन्तु हमारा काफिला अभी थोडा और आगे वढा ही था कि एक सुन्दर १८ वर्षीय युवती, कभी इधर हसती, कभी उधर हंसती, उन्माद की लहरो में पागल, स्वास्थ्य मत्रीजी के हाथो से फल लेती हुई वोली, "अरे, हमतो बाहर टहलते टहलते फल खायेंगे"। और वह गैलरी मे आगई, आधा टमाटर मुंह मे दबाया, आधा बाहर खीचा और एक हृदयग्राही झटके के साथ टमाटर के टुकडे का पटाका बनाते हुये चिकित्सा-लय की रंगीन गैलरी मे दैमारा और पाव से कुचलते हुये बोली,''कैसा सुन्दर, पागलखाने को टमाटर खिला दिया। अरे, हम तो बाहर टहलते टहलते फल खायेंगे"। और वह पागलखाने को फल खिलाते खिलाते फल खाने लगी!

अभी मंत्रीजी आगे आगे चीड के बेडौल नटखटी दरवाजे से निकल कर दूसरी गैलरी मे हम सब बुद्धिमानो का नेतृत्व कर ही रहे थे कि एक १६ वर्षीय छात्र टागे अडाकर खडा हो गया और बोला, "मुझे छुडाओ, इस पागलखाने से मुझे छुडाओ। आप मंत्री है, क्या आप मुझे नही

छुड़ायेंगे ?" और फिर क्षणभर मे घबराकर बोला, "आप क्या सोचते है, यही न कि मैं पागल हूं। नही, नही, मैं पागल नही हू और फिर भी मुझे यहा जकडकर क्यो बाध रखा है" ? इस जवान लडके के सामने मन्त्रीजी चुप नही रह सके और प्रेम से उसके सिर पर हाथ फेरते हुये बोले, "नही, नही, तुम पागल नही हो। यहां तो तुम्हारी बीमारी का इलाज हो रहा है। और यदि तुम यहां नही रहना चाहते हो तो हमारे साथ चलो। तुम हमारे ही पास रहना"। मन्त्री जी की बात सुनकर युवक सोच मे पड गया। वह हा, ना, कुछ भी नही कह सका। उन्माद के क्षणो मे भी विवेक की सरिता बह निकली और पूरी जिम्मेदारी की भावना से वह बोला, "अगर आप मुझे बीमार ही समझते हैं तो फिर मैं आपके साथ चलकर क्या करूंगा। आपकी इच्छा है तो मेरा इलाज यही होने दीजिये, मैं यही रह जाऊगा"। इतना सुनते ही मन्त्री जी की दोनो आखे बीमार की आखो से मिल गई, और साथ ही उनके चारो ओर खडे दर्जनो नर नारियो की आखें भी पागल की आखो मे मिल गईं। सब की दृष्टि बिन्दु का लक्ष्य एक ही था, पागल बीमार और सभी के हृदय उसकी आंखो मे समा रहे थे। इस अनोखे मिलन की प्रीत मे कुछ बरस रहा था, पता नही चन्द्रमा की शीतल चादनी का शौर्य या अलौकिक का चिन्तित रोमाच। हा, जब सब उसको छोडकर अठखेलियां खाते आगे बढ गये तो भी इस बीमार की आखें सब का पीछा करती रही, वे रात्रि की निद्रा मे चले गये तब भी सबका पीछा करती रही और आज भी कितने ही काल के पश्चात पीडा के तार बनी हृदय की दीवारो मे झनझना रही हैं। कभी कभी वेदना भरा प्रश्न उठता है, "क्या है कोई उसकी चमकती हुई आखो की स्मृति मे फूलो की बहार सरसाने वाला ?"

मन्त्रीजी का काफिला आगे चला, और जब कोई बडबडा रहा था, "और बिजली के शाक लगा लगा कर मारदो कमरे मे बन्द करके झुसलाओ, हमारी हसरतो पर अंधेरे मे उन्माद की लहरो का मिलन

बहा दो," तभी मोटरो के दरवाजे खुल पडे, पागलखाने के यात्री इधर अपनी मंजिले मकसूद पर रवाना हुये और उधर पागल लोहे के जंगले की ताडियो मे लटकते लटकते चिल्लाने लगे, "हा ... .. हा....... ही .... ...ही, अजी ओ जनाबवन्द ! जरा हमारी भी तो सुनते जाइये, हमे भी तो अपने साथ लेते चलिये" । और जब एक साथ सब मानसिक व्याधि के शिकारी चिल्लाते थे तो मुशाहिरे की गजले कूक उठती थी, "इधर झूठ, उधर माया फरेब, एक तरफ शोषण, दूसरी तरफ कुबेर की स्वर्ण नगरी, और आये हैं ये प्रपंच नगरी के यात्री हमारे दर्शन करने के लिये, हमे तोहफे बाटने के लिये। अन्तर केवल इतना ही है कि ये सब माया के उन्माद मे बडे पागलखाने के बुद्धिजीवी पागल हैं और हम इस छोटे से पागलखाने के मरीज !"

# अल्लामियाँ की खैर

"अल्लामियां की खैर, सांस का क्या ठिकाना, चले कि न चले" ये शब्द हाईकोर्ट के एक विद्वान् जज ने प्रात:काल अपने ड्राइंगरूम मे बोल दिये। उस समय उनकी निगाहे नीची, चेहरे पर मृदु मुसकान और हृदय मे एक जटिल गम्भीरता थी। उसने तो इतना ही कहा था, "अभी न सही, आखिर रिटायर्ड जीवन मे शायद आप गन्दी बस्तियो के बच्चो मे अपना घर बना लेंगे। हा...... हा ...... आपके बच्चे हैं न, आप उनसे खेलते हैं न .. ... और गन्दी बस्तियो के बच्चो मे और आपके बच्चो मे फर्क ही क्या है?" वह तुरन्त ही बोल उठे, "नही, नही, कुछ भी फर्क नही, मैं तो तुम्हारे मे भी कोई फर्क नही समझता हू, पर देखो, अल्लामियां की खैर, और हा, बाबा, तुम मुझे गलियो मे चक्कर मत लगवाओ, मैं तुम्हारे काम को बहुत पसन्द करता हू और समझलो, मैंने यही बैठे बैठे देख लिया है।" निश्चय ही न्यायाधीश महोदय बोलते थे तो ऐसा मालूम देता था कि जुबान नही चल रही है, हृदय के स्पन्दन टिक टिक कर रहे है। सम्भवत: उनका अन्तर्मन महाकाल के थपेडो मे आहत होने पर ही मौन मुद्रा मे जीवन की असारता और क्षणभंगुरता की समाधि लगाये बैठा है। पर उनके अतीत के सुख दुख, योग वियोग से भला उसका क्या लेनदेन था और इसीलिये सास चले कि न चले से उसका क्या वास्ता। वह जब घर मे चला तो निश्चित उद्देश्य लेकर चला था और इसीलिए बोल उठा, "वाह, जज साहब, खूब रही। कैसा अन्तर्यामी दर्शन? मुझे देख लिया तो गन्दी बस्तियो को भी देखा लिया, गन्दे बच्चो को भी देख लिया, उनके सुख दुख को भी देखलिया। कैसा अच्छा हुआ कि अपने

स्वप्न को सत्य और सत्य को स्वप्न मानकर असम्भव को सम्भव की कल्पना मे सजो दिया।" उसने फिर असावधानी से निगाहें गढाते हुये कहा, "अर्ज यह है कि आप मुझे न देखें, चल कर गन्दे बच्चों को देखें" और जब वह यह शब्द बोल रहा था। तो उसका अन्तःकरण धड धड करके उससे मौन भाषा मे कह रहा था, "देखो, सावधान रहना, कही जज साहब तुम्हे न देखलें। तुम्हारे अन्दर कबसे विस्मय का सागर डांवाडोलित है, तूफानो के झंझावत शृंगारप्रिय वासना से अन्तर के दिव्यरूप को कबसे जर्जरित किये हुए हैं, कब से अतिमानस का चैतन्य सूर्यग्रहण विक्षुप्त है। तू अब तक प्रणय और वासना की उर्वसी से पिंड छुडाने का घनघोर संघर्ष कर रहा है पर हाय, देव तेरी सुन ही नहीं रहा है।" ऐसे ही एक दिन समाधि मग्न, जंगल के एकान्त प्रांगन मे उसने विनती की, "देव, तुमतो अन्तर्यामी हो और पतितपावन भी। पर मोह, महामोह की गठरी मे बोझिल, मैं कबसे तुम्हारे चरणों मे व्याकुल बैठा हूं। तुम मुझे स्वर्ण और शृंगार से नही रोग-शोक-मोह से मुक्त करदो और इन वटवृक्षो के परिन्दो के समान मुझे भी मस्त मानव बनादो।" किन्तु देव बोले, "तुम पागल हो" और अन्तर्ध्यान हो गये। तभी मे उसने समझ लिया, "मैं पागल जो हूं। महारोग, शोक, मोह की प्रपचनायें मुझे जकडी हुई प्रियम्वर वासना द्वार तक छोड छोड कर चली जाती है और अपने अन्तरंग का स्वामी मैं विक्षुब्ध, विवश युद्ध करता करता पागल जो हो गया हूं।" इसीलिये उसने सोचा "सयत जीवन की छत पर टहल कदमी करने वाले जज साहब कही मेरे "अ ह म्" को खिड़की मे से न देखलें, मुझे निश्चय ही बहुत बचबचा कर काम करना चाहिये। कही ऐसा न हो जाये कि मानव जीवन की इस हेराफेरी मे पारस और पत्थर का भेद लुप्त हो जाय।"

किन्तु हा, अल्लामिया के करण मे यह भेद भाव बना रहा। फिर उसके मन मे अनादिकाल से काही शंका घर किये हुई थी, "अल्लामिया

भला कौनसी चिड़िया है। वह तो सदा से मेरी जेब की पुड़िया बनी फिरती है और जज साहब को जिससे इतना भय है उसीसे मुझको इतना खिलवाड है ? मैं तो उसको गेंद की तरह उछालता फिरता हू और वह मनहूस भी मेरा पीछा छोडता ही नही ? मैंने कितनी बार उसको छाया समझ कर ठुकराया। पर प्रकाश की हर किरण के साथ वह कभी मेरे आगे और कभी पीछे, ऊपर नीचे सब दिशाओ मे मेरे तत्वज्ञ पिंड की रेखाये बन कर मुझे हडपने की कोशिश कर रहा है।"

अभी जीवन का यह अन्तर चल ही रहा था कि सहसा किसी ने अदृश्य सहायता करदी और जज साहब बोल उठे, "देखो भाई, सरकार हम से यह चाहती है कि हम लोगो से घुले मिले नही, हम अपना समय इधर उधर की बातो मे "स्केटर" न करें और अपने काम से काम रखें।" यह एक व्यावारिक तराजू मे नपीतुली बात थी और उसके जैसे बेतुके आदमी से इसे कतर कतर काटने की उम्मीद थी। और जब अनाडी मूर्ख ने अपनी कैंची उठाई तो सिले सिलाये सुन्दर सुन्दर कपडो पर ही आजमाइश हो गई और देखते ही देखते चारो तरफ कतरने ही कतरने फैल गईं। कही रेशम की, कही ऊनकी और कही सूत की, जिधर देखो उधर, कतरनें ही कतरनें बिखरी पडी थीं। भला वह भी इससे अधिक और क्या कर सकता था और इसीलिये एक खास व्यगात्मक उपेक्षा के साथ उसने कहा, "फिक्र मत करिये। मैं हाई कोर्ट के जज के पास नही आया हू वह, तो अति क्षुद्र प्राणी है, पाप की सजा देने वाला देव नही दानवाधिकारी ही हो सकता है। देव तो अक्षम्य मे भी क्षम्य ही रहता है, पर कलिकाल के न्यायाधिकारी यदि यह करने लगे तो फिर हत्या के बदले मौत की सजा नही मिश्री की रोटी मिला करे। किन्तु धरती माता के ऐसे भाग्य है ही कहा ? इसीलिये मैं तो उस मानवदेव के पास आया हू जो हाईकोर्ट की चार दीवारी से मुक्त महान है। मानव की उस आत्मा मे से जज साहब की एक छोटी सी रकम निकाल कर बाकी मुझे सौंप दीजिये और याद रखिये

कि उस सारी मानवीय दौलत की पाई पाई चुकने वाला मैं जन्म जन्म का वोहरा द्वार पर बैठा हूं" और जब जज साहब उसे जन्म जन्म का कर्ज चुकाने से आनाकानी करने लगे तो ड्राइंगरूम मे टगी हुई एक बड़ी तस्वीर की ओर उसने इशारा करते हुये तरन माया, "और यह भारत के महान् सपूत विवेकानन्द की तस्वीर ? यहा क्यो लगा रखी है ? उतारो, इसे उतारो।" और इतने ही मे जज साहब के पास बैठा हुआ एक नन्हा सा अबोध बालक उसकी ओर देख देख कर हँसने लगा तो उसके मुंह से निकल पड़ा, "यह देखो, मेरी बातो को यह बालक कितनी अच्छी तरह से समझ रहा है," और इतने मे ही जज साहब बोल उठे, "और मैं भी इतनी ही अच्छी तरह से समझ रहा हू। आपके हुक्म की तामील हो जायेगी। मैं गन्दी बस्ती के बच्चो को देखने के लिये आऊंगा।" और थोडासा जोड तोड लगा कर उसने कहा, 'चलो पहली जनवरी को ही मिष्ठान बाट दिया जाये।" वह भी उसके लिये किसी आत्मीय की सगाई मे कम महत्व का दिन नही था।

किन्तु दिन भर की दौड धूप के बाद जब राम नाम जपता हुआ वह अपनी चरचराती खटियापर लेटने लगा तो किसी ने आवाज दी, "अरे ओ सोने वाले, जागता भी है या नही।" उसने सुनी अनसुनी करदी और मृदु निद्रा के झौको मे झूलने लगा कि फिर एक कठोर आवाज आई, "अरे ओ सोने वाले, जगे न।" फिर भी उसने ध्यान नही दिया। अर्द्ध रात्रि मे खर्राटे भरने लगा, रात्रि के तीसरे पहर मे फिर बिजली कड़कने की आवाज आई, "अरे ओ मूर्ख, सोता ही रहेगा क्या ? उठे ना।" उसने समझा "स्वप्न है।" प्रातःकाल निकल चुकने के बाद जब उठा तो अल्लामिया मुस्कराते हुये कह रहे थे, "चलने की तैयारी कर -......जीवन की कालरात्रि को तूने सोते सोते ही बिता दिया..........तू इस लोक मे रहने का अधिकारी नही है।" और अल्लामिया अपनी मुट्ठी मे एक चमकती रोशनी दबाये अम्बर को पार करते हुए क्षणभर मे अन्तर्ध्यान होगया।

# मीना बाजार

अभी शाम को तीज का मेला देख कर वह अपने स्कूल मे आया ही था कि एक लडके ने आकर पूछा, "भाई साहब, आज पढाई की छुट्टी है ना?" उसने कहा, "हां, पढाई की छुट्टी है, पर तू बैठ जा। मेले मे क्या क्या देखकर आया है?" वह १५ वर्षीय सरल भोला भाला किशोर बोला, "भाई साहब, मेला खूब भरा था। गावो से स्त्री पुरुष खूब आये थे। तीज का जुलूस भी बहुत सुन्दर था। आगे आगे रग बिरगे मंडपो से सज्जित पचरगे झंडे फहराते हाथी, घोड़े, बाजे, दर्शको के मन को मोह रहे थे।" उसने किशोर की बात सुनकर कहा, "तू बहुत भोला है, सामन्ती युग की अन्तिम विस्मृति "तीज" भी शीघ्र ही एक दिन विदा हो जावेगी। किन्तु हा, तुझे कोई बात नापसन्द भी आई या नही?" लडके ने तुरन्त ही अनर्गल प्रवाह के साथ कहना आरम्भ किया, "हा, एक बात मुझे बहुत खराब लगी। ग्रामीणो के झुड के झुड बरामदो पर बैठी ग्रामीण स्त्रियो के सामने अनेक प्रकार के बडे ही अभद्र अश्लील नाच गाने कर रहे थे। कभी तो कुटुम्ब का सबसे बड़ा आदमी और कभी १५ वर्षीय सबसे छोटा बालक नाना विधियो से नृत्य करके स्थिर चित्त ग्रामीण युवतियो को लुभा रहा था। कभी उनके अधर, कभी आख, कभी हाथ, कभी कमर का बल, जैसे कामदेव की सम्पूर्ण भाव भंगिमाओ को सिमेट कर रति के हृदय में सर्पदंश कर के खिलखिला उठते.... .. ....... और फिर आगे बढ जाते, किसी अन्य यौवन से मदमाती ग्रामीण नारी को अपनी तीखी निगाहो से खोज निकालने के लिये।" लड़का अभी अपनी बात समाप्त भी नही कर पाया था कि, उसने कहा, "पागल कही" के, इसी को तो

"मेला," कहते है, सभ्य समाज इसी को संस्कृति कहता है, तू इसी को अश्लीलता कहता है.. .. ..." किन्तु लड़के ने बीच ही मे बात काट कर कहा, आप भी इन पाशविक और जंगली रिवाजो का संस्कृति और मेलो के नाम पर समर्थन कर रहे हैं ? मैं यह सब कर्म देखने के बाद पिछले तीन घटो से अत्यन्त ही विक्षुब्ध और चिन्तित हो उठा हूं। हाय, हमारे ही निकट एक १६ वर्षीय शहर की सुन्दर लड़की अपने संरक्षक के साथ पटरी पर खडी मेला देख रही थी। उन गंवारो के यह अश्लील नृत्य देखकर उसकी आखे "बलात्" नीचे झुक जाती थी। निश्चय ही मैंने उसके मनोविज्ञान का अध्ययन किया तो ऐसा मालूम होता था मानो वह भारी अपमान के बोझ से दब गई और उसका हृदय कुछ विस्फोट करना चाहता है।" मैंने उस लडकी से डरते डरते पूछा, "बहिनजी इन गवारो के ये अश्लील नृत्य गीत सरकारी तौर पर बन्द हो जाने चाहिये।"

किशोर ने आगे कहा, "बस, इतनी सी चिनगारी काफी थी। विस्फोट हो गया, बहिनजी भी वैसे चटक मटक और जारझीट मे सिनेमा की किसी परी से कम नही थी, जहां तीज मोटी और प्रौढ महिला लगती थी वहा बहिनजी पतली दुबली कुसुम कन्या। पर जब वह बोलने लगी तो किसी महान दार्शनिक की आत्मा से कम नही थी। ऐसा मालूम हुआ कि "शरत" और "प्रेम" की सारी मीमासा इसी क्षण बहिनजी करने पर उतारू हो गईं पर मैं यह कदापि नही समझ सका कि मेले का मजा किरकिरा हो रहा है, वस्तुत. मेरी उत्सुकता इतनी लालायित हो उठी कि मुझे बहिनजी की दो आखो में ही मेला नजर आने लगा। मैं यह भूल गया कि हम चारो ओर हजारो लोगो की भीड से घिरे हुये है, गंवारो के नृत्य हो रहे हैं, बाजे बज रहे हैं" और मेरा ध्यान उस समय इन्द्र धनुष के समान चित्रखिचित रह गया जब बहिनजी बोली, "पुरुष द्वारा नारी जाति के अपमान की यह आखिरी सीमा है जब सरे आम

तीज के मीना बाजार मे रूप की परख हो रही है और वह भी धर्म और संस्कृति के त्योहार की आड़ मे। एक समय था जब कि भोग विलासी राजा महाराजा, सामन्त सरदार, इन्ही मेलो मे खिडकियो और बरामदों मे बैठी तरुणियो को पसन्द करके अपने हरम मे बन्दी बना लेते थे। किन्तु अब स्वतन्त्रता का सूर्य अपनी तेजस्वी आंखो से द्रौपदी की लाज का चीर हरण करते देख रहा है और उसे संस्कृति की रक्षा का आवरण बताकर अपना मनोविनोद स्थिर करना चाहता है।" इस युवति ने पुनः स्थिर वेग से कहा, "आप जैसे युवको को इस ओर संगठन करना चाहिये ताकि आगे तीज मे यह नृत्य गीत न हो सके। हां, इन मेलो मे शुद्ध कलात्मक ग्रामीण नृत्य हो सकते हैं और अवश्य ही होने भी चाहिये।

यह सब विवेचन करते हुये किशोर ने कहा, "बहिनजी ने मेरे मन लायक प्रस्ताव स्वयं ही उपस्थित कर दिया। मैंने बहिनजी को तुरन्त ही अपनी स्वीकृति देदी और यह प्रार्थना की कि इस संगठन का निर्माण मैं करूंगा, सैंकडो स्कूल के छात्रो को इसका सदस्य बना लूंगा।" उसने बहिनजी से निवेदन किया, "किन्तु इसके अध्यक्ष आप ही बने। बस इतना सा कष्ट आप स्वीकार करलें तो फिर देखिये, क्या मजाल कि अगले वर्ष तीज पर गवार लोग नारी जाति को अपमानित कर सकें, उसकी ओर आख उठा कर भी देख सकें।" लडके ने आगे कहा, "और भाई साहब, मेला खतम होने पर मैं बहिनजी के साथ उनके घर गया, चाय भी पी और बाकी योजना कल के लिये छोडकर इधर आगया। पर मेरा मन जैसे अब भी वही पर अटक रहा है।"

इतनी बातें सुनकर भाई साहब का माथा ठनक सा गया। पर वह ध्यानपूर्वक उससे बोले, "अरे, तेरी बहिनजी तो अध्यक्ष बनेंगी, और तू मंत्री बनेगा, पर मेरे लिये भी कुछ छोडा है या नही ?" वह किशोर तुरन्त ही बोला, "वाह, वाह, भाई साहब आप ही के भरोसे तो मैंने यह सब किया है। आप ही तो हमारे मार्गदर्शक होगे।" भाई साहब

किशोर के भावो को समझ कर बोले, "किन्तु मुझे तो ऐसा लग रहा है कि तीज के मीना बाजार में गंवारो से भी हजार गुना अपराधी तू है। गंवार तो खाली नृत्य गीत करके ही अपने अपने घर चले गये किन्तु तू .......... तू .. ....... तू तो आज तीज के घर ही हो आया, प्रसाद भी चख आया और कल नौबत शहनाई तेरे घर पर बजने लगेगी, तो स्वय तीज तेरे शयनागार मे आजायेगी।" भाई साहब रुक न सके, "वासना के असंख्य द्वार होते है। आज वह समाज सुधार के नाम पर तेरे अन्दर प्रविष्ट कर गई है। तू यौवन और युवति के बीच की दीवार को अभी नही पहिचान सकता है। तू अन्धा है। इसीलिये पहले सत्य दृष्टि प्राप्त कर, पीछे समाज सुधार के चक्कर मे पड।"

भाई साहब की बात किशोर नही समझ सका। वह घबरा भी गया था। उन्होने कुछ मधुर वाणी में कहा, "समाज सुधारक बनने की भी एक आयु होती है। मैं समझता हू प्रत्येक ४० वर्ष से ऊपर की आयु वाले प्रौढ को ही जीवन के सच्चे अनुभव प्राप्त हो पाते हैं और उसी को समाज सुधार का नेतृत्व अपने हाथ मे रखना चाहिये। तुम जसे युवको को ४० वर्ष की आयु तक इन्तजार करना चाहिये। तुम जैसे युवको के लिये समाज सुधार नही, आत्म सुधार की आवश्यकता है। प्रथम चरित्र और फिर समाज सुधार, यही उपक्रम हमारी समाज चेतना के नये मूल बनने चाहिये। चरित्र की कठोर तपस्या मे तपे बिना समाज सुधारक पग पग पर माया, लोभ, प्रलोभन और आकर्षण के गहरे गर्त मे गिर जायेगा और अपने साथ न मालूम और कितनो का जीवन नष्ट कर देगा।"

किन्तु किशोर बात सुनकर नही समझ सका और बोला, "भाई साहब, मेरा मन नही मानता।" भाईसाहब ने कहा, "तेरे ऊपर माया का जादू फिर गया है, तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, नही तो तू समाज सुधारक बनने के लिये क्यो आतुर होता। क्या बाल्यकाल से आज तक तू सरे

बाजार मे ऊषा से लेकर अर्धरात्रि तक बरामदो मे बैठी सजी सजाई नटनियो के सामने इसी प्रकार के अश्लील नृत्य, गीत और अभिनय नही देखता रहा है ? सभ्य लोग दिन भर गुजरते रहते है किन्तु नटनियो को लुभाने वाले भी अपने आनन्द मे मग्न रहते हैं। कोई किसी के काम मे दखल नही देता है।" उन्होंने तीव्र वेदना से कहा, "यह सब क्या है ? बड़े बुजुर्ग, राज्य के समाज कल्याण विभाग और मोटी मोटी मूंछो व आखो वाले समाज सुधारक और लम्बी पैनी कलम वाले अखबार नवीस, सब अन्धे हो गये हैं, नही तो क्या समाज की रीढ पर इस गन्दे कोढ को नश्तर से काटने वाला कोई भी नही रहा ? तीज का मेला तो वर्ष मे एक आध बार ही आता है और ग्रामीण भी एक आधबार ही नृत्य से मन बहलाते हैं, पर निरन्तर नृत्य की वेला से सुषुप्त सरे आम-बाजार तुम्हारी आखो का काटा क्यो नही बन जाता है ?" किशोर चुप था, नही, नही, सारा का सारा समाज चुप था, उसे क्या, द्रौपदी का चीर हरण करते समय भीष्म पितामह की बुद्धि भी तो दुर्योधन का अन्न खाने से भ्रष्ट हो गई थी।"

# ११७

किसी ने रात्रि के दस वजे अपने नव निर्मित वंगले के छोटे से लान पर मृदुल मृदुल मुस्कान से अपने अधरो को हिलाते हुये कहा, "आपका टैम्प्रेचर तो ११७ डिग्री है और मेरा ७० डिग्री"। मेरे मुंह से भी तपाक से निकल गया, "नही, मेरा टैम्प्रेचर ११७ डिग्री है और आपका जीरो........ फ्रीजीग पाइंट .......... नही.......... नही ..........विलो फ्रीजीग पाइंट।" हमारे लोहे की गर्मी जितनी तेजी से भभक उठी थी उतनी ही तेजी से वर्फ की चट्टान के समान ठंडी भी पड़ गई। क्यो? वर्फ की चट्टान के समान ही सजीव हिमशीत मानव हृदय जो सामने खड़ा था। यह तो प्रकृति के सामान्य नियम का ही परिपालन था। गर्मी के सामने गर्मी, सर्दी के सामने सर्दी और वर्षा के सामने रिमझिम झड़ी, वैसे ही प्रेम के सामने प्रेम और मिलन के सामने मिलन, जैसे नित्य मे अनित्य की घटनाओ का समावेश दो हृदयो को एक शान्त संगम पर मिलने को वाध्य कर रहा है किन्तु प्रकृति के विरोध मे एक रसायन क्रिया का संचार भी सामान्य कल्पना से परे की वात है और वह यह कि अति उष्ण के सामने अति शीत का मिलन क्या समशीतोष्ण जगत की दृष्टि करने की सार्मथ्य नही रखता? यदि ऐसा है तो शीत और उष्ण का मिलन भी एक कल्पित वरदान नही वल्कि घटित तथ्य का मूर्तरूप धारण करता रहे। और ऋतुकाल मे जब वृक्ष कुसुम फल देने लगेंगे तो हम सब चखने को आतुर हो जायेंगे।

किन्तु आखिर ११७ के अन्तरंग मे है क्या? हिमशीत कणिका बिन्दु इस तथ्य को कैसे जाने? ११७ तक पहुचे बिना ११७ के महान

उष्णा को कैसे जाना जा सकता है ? हां, यह तो निश्चय ही है कि हिमशीत से बढते बढते ही ११७ अपने लक्ष्य तक पहुचा होगा और अभी जीवन की पदयात्रा मे निरन्तर गति ही गति है और वह भी १७० तक पहुचने की। पर इस चिरन्तन गति का प्राण कहां है ? निश्चय ही किसी सुभग सलौनी कामिनी कुलश्रेष्ठा के अतिरंजित भडकीले ओष्ठो पर नही किन्तु नारकीय गन्दगी के ढेर मे तडफडा और छटपटा कर उन्माद से मरने वाले वालक वालिकाओ के शवो पर। सहसा गीत शव समाधियो से असंख्यात नर नारियो, वालक वालिकाओ की घनघोर आर्तनाद चीत्कार विष नागिनी के समान फुफकार करती हुई ऊपर आने लगी "देखो, हमे देखो ! अरे यह क्या, हमे देख देख कर आंखें वन्द क्यो करते हो ? क्या हिशशीत शान्ति की रक्षा के लिये पलको के कपाट वन्द करना आवश्यक है। किन्तु चिन्ता नही, हमारी धधकती चिनगारिया तुमसे पूछती है कि तुम्हारी ये अट्टालिकाये किस पर वनी हैं"। अचानक सहस्रादि स्वर गूंज उठे, "हमारे टूटे फूटे, कच्ची कीचड की मिट्टी के दुर्गन्धयुक्त झोपडो के वक्षस्थल को रौंध रौंध कर ये राज महल और वगलें खडे हो गये हैं। फिर क्यो न इनमे हिमशीत कूलर मन के अग्नि सूर्य को चन्द्रकिरणी के समान शीतल चन्दन वनादे।" धधकती चिनगारियो पर वहुत पानी छिडका पर वे शान्त नही हुई। वार वार उफन उफन कर ज्वालायें उगलने लगी और अपने निकटस्थ सभी को भस्म करके कहने लगी, "और ये हिरणो की चौकडियां भरते हुये लडके लडकियां अपने अपने वस्तो मे वीणापानी सरस्वती की रागिनियो को वांधे हुये कहा जा रहे हैं, भगवान धन्वन्तरी के पूज्य शिष्य या च्यवन ऋषि को पुनः प्राण और यौवन देने वाले अश्विनी कुमार या हवा के घोडो पर सवार होने वाले पायलाट, इंजिनियर, या सत्ता और अधिकार को एक मुट्ठी मे जकड कर वाधने वाले मंत्री, सचिव और आइ. ए. एस. कहाँ जा रहे हैं ?" वीच वीच मे चिनगारियो मे धुंआ का अंधकार भी व्याप्त होने लगा और फिर फूलझडिया छूट छूट कर कहने लगी, "और

ये हमारे रोगी, दरिद्र, दुखो के अम्बार पर क्यो कराहते कसकते छटपटा रहे है? इनको कही स्थान नही। हनुमान की सजीवन बूंटी से भरे औषधालय–अस्पताल के महल देवपुरुषों को यथायोग्य स्थान देने के लिये हैं, इनको नही।"

पर "देवपुरुष" भी अपनी ही वाणी मे कभी कभी पुचकार भरी व्यथा मे कहने लग जाते, "४२० ...... व्यर्थ की धन सम्पत्ति इकट्ठी करली ... .. तुम भी खोलदो इन महलो के कमरो को धधकती अग्नि से जर्जरित ११७ नम्बर वालो के लिये।" किन्तु वह मुस्करा कर रह जाती... ...."क्यो, अनन्त के उन शयन कक्ष क्षणो मे मीठी मीठी अर्द्ध निद्रा मे उन्मत्त वाणी जब बोलती..... ये ३० नम्बर इसके, ४० उसके और बचे खुचे १० उसके। शेष बीस का हिसाब लापता ? पर फिर भी "डिस्टिंक्शन" तो मिल ही गया....... बाकी यश जाये धरातल मे। यह है "हिमशीत" कणिकाओ की करामात, कि अपने से अधिक उष्ण पुरस्कार प्रदान कर दिया। किन्तु यह पता नही रहा कि अग्नि के इस गोले मे सब कुछ भस्म हो गया, शेष कुछ नही बचा, शून्य भी नही। फिर नम्बर देने से क्या होता है, बात तो लेने की है....कि एक एक चिनगारी जला कर अपने महल मे भी आग क्यो न लगादो।" पर मानव की शीत शान्त बुद्धि एक गई और कहने लगी,............

"यह सब मेरा है, मेरी सन्तानों का है, और इससे भी आगे मेरी कब्र पर श्रद्धा के दो फूल उगाने वाले उन वशजो का है जो काल के "भावी" गर्भ मे से पैदा होते रहेगे। ये मेरे नाम की अमरबेल को काल कवलित होने से सदा चुनौती देते रहेगे और मैं मर मर कर भी जी उठूंगा, इस मूर्त भस्म की चक्करदार संगमरमर की गैलरी मे।"

पर मेरे मन की अशान्त पिपासा शान्त होना जानती ही नही थी। उसने कहा, "क्रोध........पीडा........दुख........कष्ट........उतावलापन....

मेरी जीवन संगिनियों, मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूं। मैं क्रोध और वेदना से परिपक्व सदा जलता रहूं, हे देव, तुम्हारे हिमशीत सांवरे सलोने मन प्रांगन मे। मैं तुम्हारी कलियो के बीच तितलियो का झुंड नही, वरन् भस्म करने वाली किरणों का उष्ण प्राण बने झुलसता रहू। मैं तुम्हारे कल कल झरने के किनारे ज्वालाओ के ताप से परितप्त, तुम्हारे जल की समस्त शीतलता को अपने गर्भ मे हरलूं और फिर मन मस्त बादलो की तरह ऊपर....... ऊपर... ... अनन्त अम्बर के वक्ष से छिपता छिपता वहां पहुंच जाऊं जहा न नदी हो न सरिता, न स्रोत हो और न असीम लहरो के मद से भरे मन मस्त सागर..................।"

:❀:

# जीवन का सतयुग

महानता लघुता को हरती है या लघुता महानता को, यह दार्शनिक विचार अनन्तकाल से उलझे हुये चले आते है। सम्भवतः यही मूल कारण है कि आज भी युवा मनुष्य जीवन के परमानन्द से वंचित हैं। एक सत्य है जिस पर सभी छोटे वडे सहमत हैं और वह यह है कि प्रत्येक बालक ईश्वर का अवतार है, तभी तो महान आत्माये जीवन के प्रत्येक क्षण मे न केवल बालको से प्रसन्न रहती हैं बल्कि स्वयं बाल बुद्धि का आश्रय लेकर बालकवत् जीवन व्यतीत करती हैं। गौराग चैतन्य महाप्रभू को देखिये जो भक्ति की नृत्यमय मुद्रा मे कैसे राधिका विह्वल हो जाते हैं पर वस्तुतः उनका वह रूप आज भी किसी मदोन्मत्त हँसते खेलते बालक मे जैसा का तैसा मिल जायेगा। सचमुच चैतन्य की जीत इसी मे थी कि उसने युवावस्था को वासना से मोड़कर सहज स्वभाव बाल्यामृत की ओर कर दिया और वे फिर अपने आप मे भूल कर स्वयं बालक ही बन गये। ऐसी अवस्था मे क्या आश्चर्य, संसार के सम्पूर्ण जीवन दर्शन और तर्क वितर्क स्वतः हल होते गये, न किसी को प्रश्न करने की आवश्यकता रही और न उत्तर देने की। सब कुछ बाल्य प्रवृति ने सीधे ही एक दैविक माध्यम से हल कर दिया। यही मार्ग बुद्ध, महावीर ने अपनाया और हमारे जीवनकाल मे महात्मा गांधी ने। अब सत्य और विवेक की अन्तर्दृष्टि से देखिये तो शीघ्र पता चल जायेगा कि ससार की महानतम विभूति प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू वस्तुतः बाल बुद्धि और बालकर्म के अतिरिक्त कुछ नही है। बाल बुद्धि और बालस्वभाव नेहरूजी मे से निकाल दीजिये और फिर देखिये, ऐसा मालूम होगा कि किसी ने कोहिनूर की आब को छीनकर उसे इमीटेशन बना दिया है। यही तो बात है कि

६८ वर्षीय प्रधान मंत्री नेहरु अपनी बाल ज्योति नही बुझने देते और कभी बालको की मंडली मे जाकर नाचने गाने लगते हैं तो कभी उनमे होली दीवाली की खुशी मनाते हैं। उनकी जन्म तारीख पर तो जैसे बालको का एक राष्ट्रव्यापी आनन्द पर्व ही लहरें मारने लगता है।

भारत की राजनीति मे वर्तमान मूलमंत्र का अनवरत उच्चारण हो रहा है, "आज के बालक कल के भाग्य विधाता हैं।" किन्तु जिन्होने उम्र में अपने बाल पकाकर सफेद कर डाले हैं वे कहते कहते यह समझना भूल जाते हैं कि कल का भाग्य विधाता बडा होकर समझदार और विवेकशील व्यक्ति बन जायेगा और तब बालक जैसा विभोर कुछ भी नही रहेगा। ऐसा लगने लगता है कि तब एक झरना बहते बहते बन्द हो जायेगा और उसकी जगह एक बडा शान्त और गम्भीर तालाब पानी को अपने अचल मे समेटे पडा रहेगा। यदि यही भाग्य विधाता की तस्वीर है तो अनर्थ हो गया। भारत को शतरज के (चाहे राजनीति शतरंज ही हो) मनहूस खिलाड़ियो को उतनी आवश्यकता नही, जितनी गिल्ली डण्डा लेकर मैदान में कबड्डी खेलने वाले युवा छोकरो की। यह तो एक तस्वीर है जिस पर शिक्षा–शास्त्रियो, राजनीतिज्ञो और बालक के अभिरक्षको को सोच विचार करना जरुरी है। कही ऐसा न हो कि महानता के चक्कर मे लघुता का नाश हो जाये।

एक शिक्षा–शास्त्री अपने आठ दस वर्ष की दो लड़कियो से विनोद करते करते पूछ रहे थे कि बताओ इस घर मे सबसे बडा कौन है। बच्चिया हंसती हंसती लौट पोट हो जाती और उत्तर देती "भाई साहब, आप ही हैं।" किन्तु वह नही मानते और ज्यो ज्यो प्रश्न पूछते जाते त्यो त्यो कुतूहल बढता जाता और जब बात एक सीमा तक बढ गई तो वर्षीय शिक्षा शास्त्री ने कहा कि इस घर मे सबसे बडे तुम बालक हो ४६ और सबसे छोटा मैं हू। पर बच्चे, भी इस कल्पना

को मानने वाले न थे और प्रमाण देने के लिये अड गये । फिर क्या था, शिक्षाशास्त्री ने वडे ही सरल स्वभाव से बताया, "मेरी आयु सबसे ज्यादा है इसलिये मैं सबसे पहले मरूंगा और तुम्हारी आयु सबसे छोटी है, इसलिए तुम सबमे वाद में मरोगे । जो सबसे ज्यादा जीये वही सबसे बडा । अतः तुम बच्चे इस घर मे सबसे बडे हुये । लाओ, मैं तुम्हारी १०१ पैसो से पूजा करलूं ।" और ज्यामति के थोरम के समान अपनी बात को अकाट्य प्रमाणित कर चुकने के बाद उन्होने अपने बटुवे मे से १०१ पैसे निकाले और घर के सबसे वडे व्यक्ति को अर्चनार्थ भेंट कर दिये । बच्चे भी पैसे लेकर प्रसन्न हो गये पर यह सब देखने के बाद मैं यही समझता रहा, "ये शिक्षा शास्त्री ४६ वर्ष के अर्धवृद्ध नही, ये तो ४६ महीनो के वालक है जो किलकारिया मारते मारते आगन मे हंसते है । ये कहीं अपनी वृद्धा माता के पास लगोटी लगाकर यह न कहदे

"मैया, मैं नही माखन खायो"

या फिर किसी दाऊ से झगड़ा करके वे शिकायत करने लग जायें -

"मैया मोहे दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसो कहत मोल को लीनो तू जसुमति कब जायो ।"

खेत मे बीज पडने की देर है, परिस्थितिया पाकर पौधा अकुरित होगा ही और देखते देखते वह वृक्ष भी वन जायेगा । वाल्यकाल जीवन मे तो एक उर्वरा खेत ही है जिसमे निरन्तर संस्कार के बीज पड़ते जारहे है और जिसको जैसा बीज मिला उसको वैसा ही वृक्ष और फल । यही कारण है कि सुसंस्कृत बालक एक सुसंस्कृत नागरिक बनता है न कि चोर और लुच्चा । किन्तु ऐसे भी महानुभावो की कमी नही है जो इस बीजारोपण के प्रति उदासीन हैं । मैं ऐसे एक दिन आफिस मे खाना खाने बैठा ही था कि मेरे दोनो छोटे बच्चे खेलते २ आकर बैठ गये और वडे चाव

से हंसते २ खाना खाने लगे। यह सब देखकर मेरे पास बैठे समकालीन आयु के एक पुराने मित्र ने कहा "वाह भाई, तुम्हारा खाना भी खूब निराला है कि बच्चे कच्चे भी साथ बैठ गये। मैं तो सदा अकेला खाता हू। और मेरे खाते समय बच्चो को मेरे पास आने की हिम्मत नही होती।" इस पर मैंने उत्तर दिया, "जनाब, अब आप अपने खाने का मेरे खाने से मीलान कर लीजिये और आज से ही बच्चो कच्चो को साथ लेकर खाइये। देखिये, हमारा भोजन कैसे आनन्द से चल रहा है, कोई पर्वाह नही, एक ने खिचडी खाते खाते कपडे और टेबिल खराब करदी है और दूसरी बात बात मे उसकी गलती निकालते नही थकती है।" मैंने थोडा रुक कर कहा, "कुटुम्ब के दैनिक जीवन मे भोजन करने का समय एक ऐसा सांस्कृतिक बिन्दु है जिससे पेट का पेट भरता है, दिमाग का दिमाग हल्का होता है और बच्चो पर स्थाई सात्विक प्रभाव भी पड जाता है। इसी समय बच्चो के दिमाग पर जबरदस्त नैतिक छाप लगाई जा सकती है जो आगे चलकर देश को विभूति के रूप मे उपलब्ध होती है। अतः ऐसे अवसरो से बच्चो को कभी वंचित नही करना चाहिये। इस प्रकार के दैनिक अवसरो मे पूजा पाठ, मित्रमंडलियो मे बातचीत, खेलकूद का समय आदि सहज रूप से आजाते हैं।"

यह कौन नही जानता कि एक क्षण भर का बाल विनोद भी एक युग के समान दीर्घ, कठोर से कठोर दुख और सताप को हरने वाला होता है। किन्तु बालविनोद की महिमा इस बात मे इतनी नही है कि विनोद का श्रीगणेश आप ही करें। वस्तुतः अधिकाश मौके तो ऐसे आते है कि जब बालक की प्रत्येक बात बडो के लिये विनोद का अविस्मरणीय क्षण बन जाती हैं। एक उदाहरण देखिये। अभी यह लेख लिखते लिखते बीच ही मे मेरी टेबिल पर भोजन आगया। मैंने कागज एक तरफ सरका दिये और भोजन करने लगा। इतने मे ही पता नही, जैसे किसी ने टेलिफोन कर दिया हो, आठ वर्ष से कम आयु के बच्चे खेल छोड

कर अन्दर आगये और थाली पर जम गये। किन्तु चम्मच एक ही थी और मैं खिचडी खा रहा था। छोटे वालक को यह कैसे सहन हो। एक दो मिनट तक मीठी मीठी वातें वनाकर उसने मेरे हाथ से चम्मच खिसका ली और अपना वांया हाथ यह कहते हुये पकडा दिया, "यह लो चम्मच। इससे खिचडी खाओ।" मैं भी चूकने वाला नही था। उसका वांया हाथ मैंने पकड लिया और उससे खिचडी वटोर वटोर कर खाने लगा। यह भी अच्छा खासा मजाक था कि वालक मेरी चम्मच से खिचडी खाये और मै वालक के हाथ से। आज के सभ्य समाज के सामने वाप वेटे के सम्वन्धो का एक निराला ही मूल्यांकन? तभी तो, प्रत्येक ग्रास पर एक असाधारण कहकहा और हंसी फूट पडती थी।

वालहठ एक प्रकार का जगत प्रसिद्ध दर्शन है। संसार मे दो ही हठ के धनी है, राजा और वालक। राजहठ से भी हजारो गुणा दिव्य और शक्तिशाली वालहठ होता है। भगवान कृष्ण की वाललीला में तो अनेको प्रसंग वालहठ के आते हैं और वस्तुतः इस आधार पर आज भी प्रत्येक वालक साक्षात् भगवान कृष्ण ही है। वालहठ में तो एक अवर्णनीय मिठास है जिसे आजकल माता पिता नही समझ पाते। वालहठ को समझने के लिये संरक्षक के पास भी वाल हृदय होना चाहिये। वाल हृदय के अभाव के कारण ही हम प्रायः प्रत्येक कुटुम्व मे देखते हैं कि छोटे छोटे वच्चो को ताडना दी जाती है और पीटा जाता है तथा बेचारे वाल कृष्णो को घंटो तक विलख विलख कर मनुष्य की दुर्जन बुद्धि का उपहास करना पडता है। किन्तु वच्चो को पीटने का रोग कोई माता पिता का ही एकाधिकार नही है, स्कूल के मास्टर भी अपनी मनमानी (वैंत से मारना, नील डाऊन वनाना, या दंड वैठक आदि कराना) से वाज नही आते। निश्चय ही वाल प्रेमियो को इस ओर गंभीरता से ध्यान देना है कि किस हद तक वाल सजा एक राष्ट्रीय अपराध समझा जाये।

जीवन का सतयुग बाल्यअवस्था के अतिरिक्त और कुछ नही है। बाल्य प्रवृति ही युवावस्था और वृद्धावस्था के द्वारा द्वापर, त्रेता और कलियुग को समूल नष्ट कर दैविक ज्योत्स्ना के युग का सूत्रपात करती है। हमारी बुद्धि बालक की रक्षा करने के लिये ही है, न कि उसकी दिव्य प्रवृतियों को नष्ट करने के लिये। और यह सभी हो सकता है कि जब हम अपने आपको बालक के चरणों मे नतमस्तक....न्यौछावर करदे। हम शीघ्र ही देखेंगे कि समस्त ससार के महात्माओं का ज्ञान, दर्शन और विवेक पोथियों की राख का ढेर मात्र है और वह बाल ज्ञान की महिमा की एक बूंद भी नही है। तभी तो महात्माओं ने बालक को अपना गुरु मानकर अर्चना की है।

अब से २५० वर्ष पूर्व महात्मा चरणदासजी ने बालक को गुरु पदवी से विभूषित करते हुये अत्यन्त ही सुन्दर काव्य वर्णन किया है

बालक गुरु उनीसवाँ, ताके लिये स्वभाव ॥
नही मान अपमान है, लोभ न कछु उपाव ॥

# स्वप्न

गन्दी बस्ती के एक कोने में झोपड़ों का समूह शायद अपने अतीत की विलग गाथा पर दो-दो आसू बहा रहा था कि उस वृद्ध ने चारो दिशाओ का साहस बटोर कर कहा, "रखिये बाबूजी, ये रुपये आप अपनी जेब मे। हम आपसे रुपये नही लेंगे। हम दरिद्रो के पास रुपये की क्या कमी है?" वृद्ध की बात सुनकर मुझे बहुत अधिक आश्चर्य हुआ। पर मैं अपनी करुणा को रोक नही सका और बोला, "वृद्धा अनाथ रामा की इस लाश को फूंकने के लिये रविराज और रविरानी ये कुछ रुपये दे रहे हैं, ले लो। हम भी तुम्हारे ही हैं, भले ही हमारा परिचय अभी आकस्मिक ही क्यो न हुआ हो।" किन्तु वृद्ध ने पुनः हाथ-जोड़ कर कहा, "नहीं, हम ये रूपये नही लेंगे।" इतना कहते कहते उस वृद्ध की आखो मे विस्मित करुणा के बादल मंडरा आये, किन्तु कैसी अनहोनी प्रकृति थी, वह वदलना जानती ही नही थी। वे बादल बरस न सके तो क्या, वे गरज तो सकते थे। किन्तु मेरा हृदय तो उनकी बरसात मे भीगने को व्याकुल था, क्यो, सफेद बालो की मुरझाई लता-कुंजो मे वे आखें बरबस कह रही थी, "हमारे अन्दर क्रान्ति की एक ज्वाला सुलग रही है। हमारी शताब्दियो से पीड़ित दुखो की एक कहानी अब अन्त होना चाहती है। अमीर गरीबो को चूस चूस कर ये झूंठन के टुकड़े हमारे सामने फैंकने के लिये आ रहे हैं? हम नही लेंगे ये टुकडे।" और फिर जैसे क्षण भर के लिये बादलो मे चकाचौंध विद्युत चमक उठी हो, "कल तक जो अनाथ वृद्धा दिन रात ठिठुर कर तडफती पडी रही, दवा और इलाज के अभाव मे जिसके प्राण पखेरू उड गये, जिसके लिये एकएक पैसे के चन्दे की भीख माग माग कर हम परेशान हो गये, आज

उसी मृतक की देह को फूंकने के लिये ये चन्द चादी के टुकड़े कौन से पुण्यमय हाथो से हमको मिल रहे हैं ?" और फिर सहसा गरज कर वे आंखें चमचमाने लगी, "ये पुण्यमय हाथो का प्रसाद नही, कलुषित पाप और शोषण का फल है कि हमारी कमाई पर ये आलीशान महल खडे हो गये हैं, ये रविराज और रविरानी जैसे महाराज महारानी, दनदनाते विमान और चमचमाती मोटरो की मौज मे मस्त हुये जा रहे हैं, हमे नहीं चाहिये ये रुपये, पाप के ढेर, अत्याचारी हाथो का अभिशाप" और इतना रोष पीते पीते जैसे उस वृद्ध की आखें विषैले कीटाणुओ और गन्दी मिट्टी से सनी भारत माता की धूल मे समाने लगी।

पर यह सब हृदय-विदारक दृश्य देखने के बाद भी मैं कौतूहल की चौपड़ खेलने से बाज नही आया। मैंने पुनः कहा, "बाबा, जरा बताओ तो, उस रामा की मृत देह के पास वह कौन स्त्री बैठी है ?" उसने तुरन्त कहा, "उसकी एक मात्र लडकी।" मैंने भी तुरन्त कहा "अच्छा तो उस लडकी को ही बुलाओ। हम ये रुपये उसी लडकी को दे देंगे। उसके किसी काम मे आजायेंगे।" मेरे अन्तिम शब्द सुनकर भी वृद्ध का हृदय फडक वज्र से पिघल कर मोम नही बन गया। उसने पूर्ववत् उत्तर दिया, "बाबूजी, वह भी यह रुपये नही लेगी। हमारे पास रुपये की भला क्या कमी है ? यहा कुबेर का खजाना भरा पडा है ! दरिद्रो की बस्ती मे रुपये की क्या कमी सोना बरसता है सोना, हमारे इन टूटे फूटे नारकीय झोपडो मे। आपकी बलिहारी, आप जा सकते हैं।"

एक ओर वृद्ध यह सब अनर्गल रूप से कहता गया, दूसरी ओर रविराज के हाथो मे दस दस रुपयो के कई नोट थमे के थमे ही रह गये। हम सब उन स्थिर-चित्त हाथो मे थमे हुये नोटो को विस्मित नेत्रो से देख रहे थे, मेरी धर्म-प्रिया भी देख रही थी और राविरानी भी देख रही थी। सहसा मेरी टकटकी वृद्ध की ओर से हट कर रविरानी की ओर लग गई। क्षण भर के लिये शिष्टाचार की चोरी हो गई, "जैसे चन्द्र भी

तो कभी कभी घनमंडलो मे छिप छिप कर चमकता है, सूर्य भी तो बादलो मे लुक-छिप कर खेलता है, नयनाभिराम पुष्प की पराग भी तो कभी कभी हवा के किसी झौंके के साथ चोरी छिपे आ जाती है, वैसे ही चन्द्रवदनि के मुख मंडल पर विषाद की एक रेखा खिचती खिचती जैसे क्षितिज के उस पार चली गई हो। मैंने अपनी निगाहो पर थोडी सुर्खी का परदा जमाते हुये देखा, "सहसा रविरानी के हृदय पर भूकम्प के विप्लव भरे विस्फोट, एक के बाद एक, मानव की असहनीय दरिद्रता और अत्याचारी जल्लादो की प्राण घातक चोटें-जर्जरता के ढेर मे शताब्दियो की खडहर कहानियां-तूफान पर तूफान और प्रहार पर प्रहार, उस भोली भाली सूरत की नवजीवन आखो मे ये सब कैसे समा सकेंगे ?" वह बोली कुछ नही, पर मैं देख रहा था, "विस्मय और आश्चर्य की परत पर परत, वेदना और करुणा को झकझोरने वाला रेगिस्तान, उजाड-झाडखड के समान नारी हृदय का वह प्रदेश, शायद भूल से इस गन्दी बस्ती मे आकर दुखी हो गया।" किन्तु पलको का दुख पलको मे और हृदय का ताप हृदय मे झुलसाये वह उल्टे पाव लौटने लगी। दूर नही, दस कदम पर ही हमारी हरे रग की चमचमाती हुई नवीनतम मोटर वधू के समान हमारा इन्तजार कर रही थी। इसी बीच मेरे मुख से निकल पडा, "रवि बाबू, देखो, गन्दी बस्ती के इन गरीबो के हृदय मे एक विलक्षण क्रान्ति ( रिवोल्यूशन ) पनप रही है।" किन्तु मैंने कुछ शब्द अपने हृदय के अन्दर भी बचा कर सुरक्षित रख लिये थे क्योंकि, "मैं कोमल और सुकुमार मन्दिर के भीतर की आत्माओ को दुख नहीं देना चाहता था। मैं इस सुकुमार दम्पत्ति को भविष्य के उपयोग के लिये उसी प्रकार-बचाकर रखना चाहता था-जिस प्रकार कोई अनुभवी व्यक्ति काच के सुन्दर वर्तनो को बड़ी सम्हाल और हिफाजत से अपनी आलमारी के अन्दर रख देता है।" तुरन्त ही हम मोटर मे बैठ गये और पलक झपकते ही आ गये अपने दफ्तर के छोटे से कमरे मे।-रविराज और रविरानी भी बैठ गये, छोटे २ बालको द्वारा निर्मित सुन्दर चित्र देखने

लगे किन्तु उनके अन्तरंग मे जैसे कोई छिप कर बैठ गया हो और पुकार रहा हो "स्वप्न........स्वप्न........देखो, उठो, यह कौन........उसी रामा वृद्ध का भूत आ रहा है, आ रहा है.. ... मेरी ओर........मेरी ओर, मुझे बचाओ, बचाओ !" और तभी रविरानी के अन्तरंग मे बैठा एक "मैं" चित्कार उठा, "तुम्हे कोई दूसरा नही बचा सकता। तुम्हारे रक्षक तुम स्वयं हो। अपने ज्ञान और विवेक की अलख–ज्योति मे देखो–वृद्धा नही, स्वप्न का भूत स्वयं तुम्हारी छाया है। मानव मानव मे भेद करने वाले पूंजीवाद की दीवारो को तोड डालो तो तुम देखोगे समग्र दृष्टि मे अपने ही प्रतिबिम्ब को। सत्य के प्रकाश मे तुमको सर्व कुछ अपना ही दिखाई देगा और सब कुछ अपना पराया दिखाई देगा। जागो, प्रकाश वन्दिनी रविरानी, अपने धनवैभव की घनघोर अर्द्ध रात्रि के पर्दो को तोडकर जागो, ऊषा की मदमस्त वेला कबसे तुम्हे निहार रही है। आओ, अपने स्वर्गीय प्रासादो की छटा को धूल में मिला कर सदियो से विलखते बालको, नर नारियो और वृद्धो मे अपनत्व को विसर्जित करके असख्य सूर्यों के समान सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चरित्र के प्रकाश को कण कण मे अंकुरित करदो .......आओ, आओ....... निकट से निकटतम आजाओ" और सहसा नेत्र खुल गये, स्वप्न भी टूट गया। प्रात. काल की ऊषा-स्वप्निल ऊषा के समान मनोभावनी माया नही रही। भौतिक जडत्व की चंचल लहरें पुनः रविराज और रविरानी को कल्पवृक्षो के कानन मे घसीट कर ले गई और वह भूल गये कि अर्द्धरात्रि को कोई स्वप्न देखा था।

# चंडूखाने की यात्रा

उस गन्दी बस्ती के तीस वर्षीय युवक ने संध्या के समय कार्यालय में प्रवेश करते ही कहा, "भाई साहब, तीजका मेला देख आये हैं।" मैंने उत्तर दिया, "तू तो तीज का मेला देख आया है, पर मुझे भी तो कुछ दिखा। आज बच्चो को भी छुट्टी है, तू ही बता, अब क्या करें ?" युवक तुरन्त ही बोल उठा, "इस समय आप यदि मेरी गन्दी बस्ती मे चलें तो छटा देखते ही बनेगी। लगभग प्रत्येक कुटुम्ब मे दो चार मेहमान ठहरे हुए है और सबकी शराब की बोतलो से खूब सरबरा होरही है। हजारो रुपयो पर इन चार पाच दिनोमे पानी फिर जायेगा, महाजन सर्राफ की खूब चादी पक रही है, रैगरो के कुटुम्ब के कुटुम्ब खूब रुपया उधार लेकर आजन्म कर्ज के बोझ मे दब गये हैं।"

गन्दी बस्ती का युवक अभी अपनी बात कह ही रहा था कि विद्यालय के कार्यालय मे कुछ बड़ी आयु के मुसलमान छात्रों ने प्रवेश किया। मैं कुछ सोच विचार करही रहा था कि अली बोल उठा, "भाई साहब, शराब से भी भयङ्कर चंडू का नशा होता है। इसमे धुंआ का एक कश खीचा कि बस लोट गये। २४ घण्टो तक उसका नशा नही उतरता है।" और मेरी ओर जिज्ञासापूर्वक देखते हुए उसने कहा, "आपने कभी चंडूखाना देखा भी है या नही ?" इतने ही मे गन्दी बस्ती का युवक भी बोल उठा, "हा, हां, भाई साहब, रैगर बस्ती मे चडूखाने भी हैं जिन्होने तबाही मचा रखी है। रामू तो देखते २ बर्बाद होगया। उसने अपनी दस हजार की इमारत और सामान सब चंडू की भेंट चढादी और अब दरिद्र बन गया। आप कोई उपाय करके लोगो का चंडू पीना छुडाइये।

इस समय तक रेल के डिब्बे के समान कार्यालय खचाखच भर गया था। मैं भी विचारमग्न था, कुछ देरमे मैंने कहा, "मैंने चंडूखाने का नाम ही नाम सुना है, देखा कभी नही। मैं अवश्य ही अपनी आखो से देखना चाहता हू।" इस पर एक जानकार छात्र ने आश्चर्य से कहा, "चंडूखाने मे कोई भी शरीफ आदमी नही जाता है। आप बडी इज्जत वाले है, आपको वहां गुण्डो और नशेबाजो मे एक क्षण भर के लिए भी खडा रहना शोभा नही देता। कोई देख लेगा तो आपके हमारे वारे मे तरह तरह की शङ्कायें करने लगेगा।" एक दूसरे छात्र ने कहा, 'आप वहा क्षणभर के लिए भी नही खड़े रह सकते। वदवू से आपको चक्कर आजायेगा।" वे लोग मुझे चंडूखाना देखने के लिए निरुत्साहित कर रहे थे, किन्तु मेरा मन नही मानता था। मैंने कहा, "आचरण भ्रष्ट होने से पहले प्रतिष्ठा खतम नही होती है। अतः तुम मेरी सफेदपोश इज्जत का विचार मत करो। चंडूखाने की वदवू से मेरा सिर नही चकरायेगा। रैगर वस्ती के नारकीय जीवन को देखते देखते मैं ऐसी गन्दगियो का अभ्यस्त हो चुका हू। मैं समाज के नारकीय जीवन का खूव अध्ययन करना चाहता हू और रैगर बस्ती के साथ साथ चडूखाना उसकी दूसरी किश्त होगी। एक क्षण का भी बिलम्ब मुझे सह्य नही है, चलो अभी ही चंडूखाना देखने चले।" मेरे प्रस्ताव पर सब हंसने लगे और कई लोग अवाक् से रह गये। किन्तु फिर भी कुछ हा में हा मिलाने लगे, मुझे बल मिल गया। युवक को भी जोश आगया, बोला, "चलो तो चलो, अभी ही आपको चंडूखाना दिखा लायें।"

## हम चल पड़े

रात्रि के आठ बजे हम लगभग एक दर्जन वयस्क छात्र और कार्यकर्त्ता रैगर वस्ती की ओर तरह तरह की कल्पनायें सजोये चल पडे। चंडूखाने की वदवू पर कावू पाने के लिए मार्गमे एक पैसे की अगरवत्तिया खरीदी। रास्ते की रोशनी वन्द थी और अंधेरी गलियो मे नशेवाजो को

चर्चा के विनोद मे मण्डली मुस्करा जाती थी। इतने मे ही रैगरों की कोठी पार करके हम लोग सडक के किनारे ही एक दूकान के बाहर खडे होगये, जिस पर एक गन्दे टाटका पर्दा पडा हुआ था। युवक ने कहा, "यही है चण्डूखाना।" और ज्योंही उसने पर्दा उठाया, एक जवान आदमी गुरगुराता बाहर आया, "आप लोग क्या चाहते हैं।" हमारे साथी डरकर कहने लगे, "कुछ नही, कुछ नही, हम आपसे कुछ बात करना चाहते हैं।" कुछ लोगों ने चण्डूखाने के सञ्चालक को बातचीत मे उलझाया और युवक ने फिर पर्दा उठाकर मेरा सिर अन्दर की ओर ठूंस दिया। क्षण भर से अधिक मैं नही देख सका कि चण्डूखाने का सञ्चालक पुन: घबराया हुआ आगया और उसने पर्दा ढक लिया। उसको यह भय होगया था कि हम सरकारी विभाग के कर्मचारी है और अरेस्ट करने के लिए आये है। हम और अधिक उसको भय और शङ्का मे न डालते हुए बाजार के नुक्कड पर आकर खडे होगये। अब तक क्षण भर का दृश्य ही मेरे दिमाग मे चक्कर काट रहा था, 'दुकान के कोठे मे एक नग्न प्राय: अधेड़ उम्र का व्यक्ति नशे मे चूर ईंट के सहारे अर्ध-सुषुप्त-अवस्था मे आंखें खोले पडा था। उसके एक ओर चिमनी जल रही थी और इधर उधर मिट्टी तथा लोहे की लम्बी नलियां सी बिखरी पडी थी। कहीं चिथडे और कहीं कहीं थूक भी पडा हुआ था। सारे दृश्य से दिमाग घुटने लगा और शास्त्रों मे वर्णित नरक-कुण्डों मे मनुष्य की यातनाओं के चित्रपट कल्पनातीत सजग हो उठे।" किन्तु मैं असन्तुष्ट था, क्योंकि पूरी बात नही देख सका। मैंने कहा, "साथियो मुझे आनन्द नही आया। आज का परिश्रम व्यर्थ ही गया।" इतने मे ही बिसायतियों के मोहल्ले मे रहने वाला महबूब बोल उठा, "वाह भाई साहब आपने अच्छी फिक्र की। चलिये मेरे साथ, मैं आपको मेरे एक सम्बन्धी की मदद से जिसने चण्डूखाने के लिए मकान किराये पर दे रखा है, दिखा दूं।" मैंने कहा, "यह बडी अच्छी बात हुई, अब अपना काम बन जायेगा।" अच्छा चलो। हम कुल मिलाकर ६ साथी आगे बढ गये।

# फूटे खुर्रे का चंडूखाना

फूटे खुर्रे के चण्डूखाने की गली में घुसते ही महबूब अपने एक कुटुम्बी के पास गया, शीघ्र ही वह लौट आया और हम लोगों ने वही पूर्व परिचित गन्दे टाट के पर्दे को हटाया। हमने अन्दर घुसते ही देखा कि सात आठ नग्न प्रायः व्यक्ति ( जिनमे एक लगभग ४० वर्षीय औरत भी थी ) चण्डू के नशे मे होश हवाश भूले हुए बकवास कर रहे थे। एक साथी ने मुझे इशारा किया और मैं किनारे से सटी आठ दस सीढियो पर चढकर एक कमरे के दरवाजे पर खडा होगया। मेरे खडे रहते ही पांच सात चण्डुओ का ध्यान मेरी तरफ गया और सब बोलने लगे, "आओ बादशाह, बैठो।" और वे इधर उधर खिसक कर जगह करने लगे। मैं खड़ा ही रहा और पलक मारते ही वे अपनी नशीली बकवास मे फिर डूब गये, जिसे मैं नही समझ सका। मैं केवल इतना ही समझ सका कि चण्डू के नशे मे ये लोग अत्यन्त ही शान्त स्वर मे अपनी अलग ही दुनिया बसा रहे हैं। इनको बाहर की कोई चिन्ता नही है। इनके मस्तिष्क की सभी शक्तियां एक ही ओर केन्द्रित होगई हैं। ये भोगी भी भला कैसे योगी से लगते है, किन्तु हा, हाय हाय, इनके शरीर की यह क्या दुर्दशा हो चुकी है। सभी चण्डूबाजो की चमडी स्याह होगई है, जैसे भट्टी मे कढाई तपती तपती काली कलूटी हो जाती है। सभी के शरीर के मांस का भक्षण चण्डू की पिनक ने कर डाला है। उनके चेहरों पर काले काले बादलो की परत पर परत छागई है और जब वे बोलते हैं तो उनके चमकीले दांत विद्युत की सकीर्ण रेखा आलोकित कर जाते हैं। एक दृष्टि मे मैं उनको योगी और भोगी की तराजू में तोल रहा था तो अब उसके साथ मुझे 'रोगी' शब्द भी जोडना पडा। निश्चय ही ये लोग मृत्युलोक के भोगी और रोगी हैं जो समाज की रीढ पर कोढ और नासूर बनकर हमे चुनौती दे रहे हैं। आये दिन कोई न कोई भोला पंछी इनके जालमें फंस जाता है और मजे ही मजे की किरकिरी प्राप्त करने में अपने कुटुम्ब को स्वाहा कर देता है।

अभी हमें पांच मिनट भी नहीं हुये थे कि दो सफेदपोश चंडूखाने के युवकों की दृष्टि हम लोगों की भीड पर पडी। हमारी सटीसटाई बर्फीली पोशाकें देखते ही उनका पारा चढ गया और वे चिल्लाये, "आप लोग कौन है और इस प्रकार बिना पूछे कैसे हमारे घर मे घुस आये।" फिर गहरी शंका की दृष्टि से देख कर और शायद हमको सरकारी आदमी समझ कर एक ने कहा, "अच्छा आप लोग बाहर चलिये। मैं आपके सवाल का जवाब बाहर ही दूंगा।" मैं नीचे उतरने ही लगा था कि मेरी निगाह उसके एक अन्य साथी से मिल गई। मैं उसको देखता रहा, जैसे नवजात शिशु दीपक की लौ को देखता रह जाता है। मैं उससे कुछ मांग रहा था और उसने भी तुरन्त ही भांप कर अपने साथी से कहा, "अरे ठहर, जरा चुप भी रह। इन लोगो से कुछ न कहना। ये लोग तजुर्बा कमाने आये मालूम होते है ?" वह अपनी बात खतम भी नहीं कर पाया था कि मैं जल्दी से चौक मे उतर आया और उसके कंधे से भिड कर बोला, "हां, हम एक विद्यालय की मंडली है और तजुर्बा हांसिल करने के लिये ही आये हैं। आप बडे ही समझदार व्यक्ति मालूम देते हैं, हमे कुछ अनुभव की बातें बताइये। आपका भला नाम क्या है ?"

## बाल ने मदक फूंक दी

अब हम लोग उस खंडहर से मकान के सडते हुये चौक मे चारो ओर अर्ध गोलाकार घेरा डाल कर खडे हो गये। बीच मे पाच छ चंडू-बाज एक औरत सहित अपने नशे के राग मे मस्त थे। उस आदमी ने लोहे की एक लम्बी नली हाथ मे लेकर हमे एक बेर के बराबर काली गोली दिखाते हुये कहा, "मेरा नाम बाल है, पर लोग मुझे बालू ही कहते हैं। चंडू की कुछ हल्की जात यह मदक की गोली है। इस चौक मे तो लोग मदक पी रहे हैं और ऊपर कमरे मे चंडू पी रहे हैं। आपने देखा कि ऊपर कमरे मे लोग बहुत बुरी तरह से नशे मे घायल हैं।

मदक का यह गोली अफीम और जौ के भूसे के संयोग से अग्नि पर गर्म करके बनाई जाती है। और यह देखिये, इसके पीने का तरीका"। इतना कहते कहते बाल ने उस काली गोली को लोहे की लम्बी नली के सिरे पर रखा और माचिस से सुलगा कर दूसरे सिरे से फूंक मारी। कुछ ही क्षणों मे गोली जलती जलती लाल सुर्ख हो गई और उछल कर दूर जा गिरी। लगभग आधी मिनट तक उसने उस गोली की कडवी धुंआ को अपने कलेजे मे दबाकर रखा और उसके बाद सिगरेट की धुंआ के समान बाहर धुंआ निकाल दी। इतना कर चुकने के बाद उसने कहा, "देखिये जनाब, आप लोग बडे समझदार और दिमाग वाले लोग है। जो धुंआ मैंने अपने कलेजे के अन्दर रोकी थी उसी से नशा होता है। चंडू और मदक पीने वाले इस धुंआ को फेफडो में ही रोक कर खतम कर देते है और इससे छाती के बीचोबीच की नसें फडकने लगती है। बस, इसका असर तुरन्त दिमाग और सारे शरीर पर पड जाता है और आदमी नशे मे धत्त हो जाता है।" इतना कह कर वह हमारे चेहरो की ओर देखने लगा तो मैंने तुरन्त पूछा, "यह भिक्षुओ के समान चडू पीने वाले लोग पहले कौन थे।" और उसने एक ठंडी आह भरते हुये कहा, "कुछ न पूछो। इनमे से कई लोग आपही की तरह सभ्य और समृद्ध समाज के थे। चडू का शौक इतना भयंकर होता है कि एक बार लगने के बाद नहीं छूटता और नशेबाज अपने सारे घर को राख की तरह बर्बाद कर देता है। चंडूबाजो की सोने की सी गृहस्थी देखते देखते उजड जाती है, फिर वह भिक्षावृत्ति पर उतर जाता है और अपना शेष जीवन नारकीय कीडो की तरह नष्ट कर देता हैं।" इतना कहते कहते न मालूम उसे क्या हुआ कि उसने कहा, "अच्छा चलिये, हम लोग बाहर चलें।" हम सब सडक के किनारे पर आये ही थे कि उसने पान वाले को पान बनाने का हुक्म दे दिया। उसने हमको पान पेश किये, हम लोग आनाकानी करने लगे, पर वह नहीं माना। आखिर किसी तरह पान खाकर पिंड छुडाया पर आते आते मैंने उसे अपने मकान पर

दूसरे दिन आने का निमत्रण दिया। इस समय तक उसे यह मालूम हो गया था कि मैं कौन हू और उसने मेरी इज्जत करते हुये निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

अब हम अपने कार्यालय की ओर चहल कदमी कर रहे थे। सब साथियो की हालत का मुझे पता नही, पर मेरा दिमाग अस्त—व्यस्त हो चुका था और इधर मेरी आखें बरामदो के कमरों से टिमटिमाती रोशनी मे "झाकती" हुई वेश्याओ के मीना बाजार पर बह कर चली जाती थी। मैं उधर सजी सजाई बाजार मे बिकने वाली नारियों को देखना नही चाहता था, पर आखें नही मानती थी, हृदय भी नही मानता था और क्षणभर के लिये पलको को इधर उधर करके फिर देखने लगा। मुझे भय भी लगता, "कही कोई परिचित आदमी मुझे नटनियो की ओर देखते हुये न देखले।" पर मेरा दिमाग और हृदय तो समाज के नारकीय जीवन का गहन अध्ययन करने को आतुर हो चुका था और इसी प्रकार आख मिचौनी करता हुआ मैं कार्यालय मे आगया।

## चिन्तित हो उठा

कुछ दिन बीत गये और बाल मेरे पास नही आया। मैं नित्य ही अली से पूछता, "अरे, तू बाल को नही लाया। वह आदमी मेरे बड़े काम का है।" वह कभी कभी उत्तर दे देता, "भाई साहब, वह लोग बड़े बदमाश ओर लोफर हैं, आप इनसे दूर ही रहिये।" किन्तु मै कह देता, "भैय्या तू अभी नही समझता, मुझे उससे बडी महत्वपूर्ण जानकारी करनी है। तू किसी भी तरह उसे मेरे पास जल्दी से जल्दी लेकर आना।" किन्तु फिर दिन दो दिन बीत गये। आखिर एक सुबह मेरा धैर्य टूट गया और मैं अपने एक साथी को लेकर स्वयं ही उस चंडूखाने मे पहूच गया। मैं गली के किनारे खडा हो गया क्योकि अन्दर जाने की मेरी हिम्मत ही नही हुई। मेरा साथी अन्दर गया तो एक बडी उम्र

का मुसलमान बाहर आया। उसने पूछा, "आप किसको चाहते है ?" मैं मेरे साथी के सामने वाल का नाम नही लेना चाहता था, इसलिये मैंने उसकी सूरत शक्ल का ही वर्णन किया। इस पर वह मुसलमान कुछ शंका करने लगा और झुंझलाकर कहने लगा "आप लोग गलती से यहा आगये हैं। पहले नाम पता पूरा लेकर आइये।" और जब मेरा काम नही बनने लगा तो मैंने उससे पूछा, "आप इजाजत दे तो एक मिनट के लिये मैं चडूखाने के अन्दर जाकर अपने आदमी को पहचान लूं।" उसने तुरन्त ही स्वीकृति देदी और जैसे ही मैंने टाट का गन्दा कटा फटा पर्दा उठाया तो मैंने बाल को नही पाया। पर मेरी चिन्ता की आखे एक बार फिर चडूखाने को देखकर बहुत कुछ तृप्त हो गईं। मेरे लिये जैसे चडूखाना भी सिनेमा का एक तमाशा बन गया हो। मुझे बार बार यही विचार आने लगा, "कोई कोई मन्दिर मे जाकर पत्थर की प्रतिमा को देखकर, कितने खुश और ध्यान मग्न हो जाते है। वे भगवान के पुजारी "मृतलोक और परलोक" मे स्वर्ग सुख की कामना से भगवान की खुशामद करते है और आनन्द मग्न रहते है। मुझे उनसे ईर्षा नही और मतलब पडने पर मैं भी भगवान के आगे ऐसा ही छलिया बन कर खडा रहता आया हू, पर आज . आज तो मेरे सामने चंडूखाना भी एक तीर्थस्थान बन गया है, ओह, दुआ करिये उस खुदा की जिसने मुझे यहा ला पटका और जिसकी नजर से मैं शान्त, सुषुप्त, मन्द पवन के समान हिल्लोरे लेते और बसन्त के पतझड के समान बकवास करते हुये चडूबाजो मे भी राम रहीम के दर्शन कर रहा हूं। बस अन्तर इतना ही है कि मैं दुआ की भीख लौकिक और अलौकिक सुख के लिये पत्थर के देवता से नही माग रहा हू।" मैं तो स्वय चंडूबाजो से कह रहा हू, "तुम मेरे मन की मुराद पूरी करो और मुझे यह सही सही बताओ कि अज्ञान और नर्क मे भी क्या उतना ही सुख भरा है जितना अर्धरात्रि के गहनतम अंधकार मे।" मैं रुक रुक कर जैसे उनसे कहता, "मैं किसी का भेजा हुआ दूत नही हू। मैं तो जीवन के हकीमी नुस्खो का

अध्ययन करने आया हू। तुम विषैले नुस्को पर जीते हो और मैं अमृत के नुस्को पर। मैं तुम्हें अपने अमृत के नुस्को की नैवेद्य चढाने आया हूं, तुमसे झगडा करने नही। देखो, मैं कबसे तुम्हारी आरती कर रहा हूं, तुम मेरी नैवेद्य ग्रहण ही नही करते। बस केवल इतनामात्र, "आओ बादशाह, यहां बैठो," कह कर फिर चडू की पिनक मे तुम स्वर्ग के सम्राट बन जाते हो। पर मैं जानता हूं कि साधना और तपस्या एक ही दिन मे पूरी नहीं हो जाती और आज मैं दूसरी बार ही तो तुम्हारे चरणो मे आया हू, आज की मेरी "हाजरी" नोट करलो, फिर किसी दिन अपनी मडली के साथ तुम्हारी अर्चना करने आऊंगा।" और मैं वापिस घर की ओर चल पडा। वह चंडूखाने का मुसलमान अपने दो चार साथियों सहित गलीके नुक्कड तक मेरा पीछा करते हुये यही कहता रहा, "जाने ये लोग कौन हैं, यहा क्यो आये है। पता नही क्या भेद है। कुछ बताते भी नही है।" मैंने मन ही मन उत्तर दिया, "नारकीय जीवन के संचालक, पाप ही तुम्हारा भेद है, भ्रम ही तुम्हारा पर्दा है, और दोजख ही तुम्हारा मुकाम है, शीघ्र चलने की तैयारी करो।"

## आखिर बाल आ ही गया

उस दिन शामको जब मैं अखबार पढ रहा था तो अचानक ही महबूब और कुछ अन्य मुसलमान साथियो के साथ बाल ने कार्यालय मे प्रवेश किया। मैं उसे देखता ही रह गया और सोचा कि प्रातःकाल जो निराशा मिली थी वह अब आशा बन जायेगी। तुरन्त ही मैंने उसका अभिवादन किया और उससे अपने कुछ अनुभव सुनाने के लिए कहा। उसने उत्तर दिया, "भाई साहब, आपके बारे मे इन मुसलमान छात्रो ने मुझे बहुत कुछ बताया है। मुझे आपसे बडा भाव होगया है। मैं इस समय लगभग ३३ वर्ष की आयु का हू और बीकानेर का रहने वाला हू। मेरे पिता छिप्पायत जाति के मुखिया है। मेरे पिता के दो भाई हैं जो कलकत्ते मे व्यापार करने

है। मेरी ११ वर्षकी अवस्थामे ही माता मर गई और तभी से मैं आवारा होगया। अब से लगभग १८ वर्ष पहले मैं घरसे निकल गया और अनेक प्रकार के कर्म कुकर्म करते हुए बहुमूल्य जीवन को बर्बाद कर दिया। बीच के काल मे, बीकानेर के पहलवान के नाम से मशहूर एक व्यक्ति को जो आजकल उम्र कैद है, मैंने अपना गुरु बनाया। "बाल इस प्रकार अपनी मन पसन्द दास्तान अनर्गलवेग से कह ही रहा था कि मैंने बीच ही मे टोका, "आप जैसे बदमाशोंके मुख्य कुकर्म क्या हैं।" उसने कहा, "कहां तक गिनाऊँ, पर आप मोटे तोर से समझिये, [१] नशा करना, [२] चोरी करना, [३] जेब काटना, [४] वेश्यागमन करना आदि आदि। "यद्यपि मैं इन विषयो पर बाल से बहुत कुछ जानना चाहता था किन्तु संयम से काम लेकर मैंने पूछा, "बालजी, क्या इन सब कुकर्मों मे तुम्हारे कोई उसूल भी हैं?" उसने कहा, "हाँ हैं क्यों नही। हम अपने उसूलके बडे पक्के हैं। मेरे गुरु ने मुझे तीन उसूल पढाये हैं।"

१. वेश्याओ को रात मे नाच देखने मत जाओ। वेश्यायें रात मे अपनी मदभरी शर्मीली निगाहो से झपक झपककर तुमसे नृत्यमण्डली मे सब रुपये ऐंठ लेंगी। फिर नाच गान भी केवल मात्र सिनेमा की नकल ही होगी। नाच गान ही देखना हो तो सिनेमा देख आओ। पर यदि किसी वेश्या से मिलना ही हो, तो दोपहर को अकेले उसके पास जाओ, कुछ रुपयो के नोट फैंकदो उसके सामने और अपना कार्य करके लौट आओ। फिर चाहे तुम रातको भी उसके यहा जा सकते हो क्योंकि वह तुमसे दबी रहेगी।

२. यदि कोई तुमसे विश्वासघात करे तो भी उससे झगडा मत करो बल्कि उससे जबरदस्त बदला लेने की घातमे रहो। समय आने पर बदला भी ऐसा लो कि वह ताजिन्दगी याद रखे। यदि उसे सूखा ही छोड दिया तो दुनियां में नसीअत कम हो जायेगी।

३ 'चोट्टे' का विश्वास मत करो। यदि किसी को चोरी का माल बेचना है तो उसे यह न बताओ कि माल कहा से आया है।

इतना कहते कहते बाल रुक गया और मेरी ओर देखने लगा। मैंने तुरन्त ही पूछा, चण्डू के नशे मे क्या विशेषता होती है? उसने तुरन्त ही उत्तर दिया, यह नशा नवाबी और बादशाही नशा है। मुगलकालीन बादशाह शराब की अपेक्षा यह नशा ही पसन्द करते थे। इस नशे मे मानव प्रकृति की तरगे ऐसी शीतल और सुषुप्त होजाती हैं कि वह अपने चारो ओर के सब सङ्कट भूल जाता है। इससे नशे मे अर्ध-निद्रा आती है, ऐसा मालूम होता है कि जैसे नीद पर सफेदी की परत पर परत या झिल्ली पर झिल्ली चढ रही हो, किन्तु पूर्ण निद्रा नही आती। आवाज देने पर चण्डूबाज अपनी गहरी पिनक (नशे की हालत) मे शाही और नवाबी ढङ्ग से ऊपर चढी हुई आधी आखे खोलता है और चिन्ताओ से बेखबर वह बोल उठता है 'आओ बादशाह'। यह बादशाह चण्डूबाज के लिए परम्परा से आदर और सलाम का शब्द बन गया है, और साथ ही इस बातका प्रतीक भी कि शाहन्शाही जमाने मे यह नशा चला आता है।

बाल ने आगे कहा, "भिखारी, रिक्शेचालक तथा अन्य चंडूबाज यह नशा करके शराबी की तरह बकवास नहीं करते है। किन्तु उनके शरीर की समस्त शिराओ के शिथिल पड जाने के कारण वे एक ओर कोने मे पड जाते हैं और बिना क्रम और बेसिरपैर की बातें करते रह ते हैं। और जब चंडूबाज नशे की हालत मे अपनी कमाई मे जुटता है तो चौगुना काम कर गुजरता है, किन्तु जैसा कि कुछ लोग बताते हैं, वह गैर,जिम्मेदार भी हो जाता है।

## चंडू पीने में क्या हानि है?

मेरा प्रश्न "चंडू पीने मे क्या हानि है" सुनते ही बाल की भृकुटि चढ गई और वह बोला, "बर्बादी! जीवन तबाह हो जाता है। जिस

प्रकार अज्ञान मनुष्य को खाजाता है उसी प्रकार नशे का दीमक मनुष्य को नष्ट भ्रष्ट कर देता है।" इतना कहते कहते उसने सरलतापूर्वक गाना आरम्भ किया ।

मन मूरख तेरी आंख खुलेगी
पूंजी सकल चली जायेगी,
इस कालरूप की चक्की मे
जान की दाल दली जायेगी।

कचन के इक रथ में
ज्ञान के घोड़े जोड चला,
पाप पुन्य दो पहिये बना के
बैठ रथ मे दौड चला।

अमता ममता दो डंडी
अज्ञान जुओकी ठोर चला,
तीन ध्वजा सत रज तम की
तुम कीकर घर से नाता तोड चला।

बंधन पांच परत संसा के
शाही अगमली जागी,
इस कालरूप की चक्की मे
जान की दाल दली जायेगी।

## अहा, तुम कवि भी हो !

मेरे मुंह से सहसा निकल गया, "अहा, बाल तुम कवि भी हो !" उसने विनम्रता से उत्तर दिया, "नशे मे जो कुछ हो जाये थोडा है। नशे मे बर्बादी है, किन्तु समस्त दिमाग की शक्तियों को केन्द्रित करके

निर्माण की भी जबरदस्त शक्तियां नशे मे छिपी पडी है। बस तरंग ही तरंग मे मैं कविता बना लेता हू। पर सचमुच मे तो, यह कविता नही, जीवन के उतार चढाव की ही कहानी है जो बरबस ही हृदय मे से निकल पडती है। मेरा इसमे बस भी क्या ?"

इधर मैने भी बाल को थोडा उकसाना उचित समझा—

"वह बोल उठा, चन्द्र चकोरी
मैं किसमे हू, जन मे, मन मे,
अपने मे या कण कण मे,
अनन्त विश्व के सतरज में।"

मैंने उत्सुकता से पूछा, "बाल कुछ और भी याद है या नही। वह बोला, "हां, हां, है क्यो नही।" और उसने अपनी रचना सुनाना आरम्भ किया।

तीजा का त्योहार बाग मे गीत सुरीले गान लागरी
कोई झूले, कोई नृत्य करे, दस पाच ताल मे नहान लागरी।
बागों मे कलोल करे झूलन का सिर्फ बहाना था।
रूपमती सती अलबेली का जीवन मस्ताना था,
मस्त महीना सावन का, यूं मन मीत दीवाना था
पतिव्रता और क्षत्राणी, दिल उसका मर्दाना था।

यहां पर रहा बाग जनाना था
कोई आवे थी, कोई जावन लागरी,
मद जोवन मे हूरचूर, गगन की ढाक फुंकाण लागरी
तीजो का त्योहार बाग मे गीत सुरीले गाने लागरी।

रसीला काव्य सुनने के बाद मन तो यही चाहता था कि हम लोग

काव्य रस मे ही खो जायें। किन्तु तत्कालीन निष्ठा का तकाजा कुछ और था और एक बार मैं अपने लक्ष्य की परिक्रमा पूरी करना चाहता था। मुझे विचार आया, "अभी तो चंडूखाने के सब तथ्य एक ही सपाटे मे इससे प्राप्त कर लेने चाहिये। इन शैतानो का क्या पता, न मालूम कितने ही घाट इनकी नौका उतरती है, फिर पता नही अवसर आये या नही। बस, यह मौका हाथ से नही चूकना चाहिये। अतः मैं प्रश्न करता गया और बील उत्तर देता गया।" बाल ने बताया .

१. इस शहर मे इस समय ५ मदकखाने और एक चडूखाना है। वस्तुतः मदक खानो और चडूखानो मे केवल अन्तर इतना ही है कि चडू का नशा मदक की अपेक्षा बहुत तीव्र होता है।

अन्य प्रान्तो, मे जसे उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश, विहार, बंगाल आदि मे चंडूखाने चलाने के लिये लाइसेंस लेने की आवश्यकता होती है, किन्तु सम्भवतः यहा नही। अब एक्साइज विभाग का ध्यान इस ओर जारहा बताया जाता है।

२. इस शहर मे लगभग एक हजार आदमी चंडू और मदक पीते है। इन लोगो मे अधिकाश रिक्शाचालक, भीख मागने वाले, आवारा, जेवकतरे आदि हैं। एक दिन मे औसतन प्रति व्यक्ति १।। रुपये तक की चंडू मदक पी जाता है। किन्तु कोई कोई १० रुपये रोज तक बर्बाद कर देते हैं।

यह जानकारी दिलचस्प है कि एक रिक्शाचालक को औसत दैनिक आय लगभग ५।। रुपये हैं जिनमे उसके खर्च का व्यौरा लगभग इस प्रकार है।

क. चडू या अन्य नशे मे........................ २ रुपये
ख. खाने मे.................................. १ रुपया

ग. चाय आदि मे ........................1 रुपया

घ. रिक्शा मालिक को ......................१॥ रुपया

कहते हैं, यदि किसी दिन रिक्शाचालक ५॥ रुपये से अधिक कमा लेता है तो वह उसके लिये त्योहार का दिन होता है और वह सीधा वैश्यालय की ओर चल पडता है।

३ चंडू के नशे मे और अन्य नशो मे काफी अन्तर है। पुराने लोग कहा करते है कि घोडे की रकाब मे दूसरा पाव रखने मे जितना समय लगता है उतने से समय में चंडू की फूंक मारते ही नशा चढ जाता है। निम्न तुलनात्मक अध्ययन भी जानने योग्य है।

क. चंडू का नशा ........................२४ घंटे तक रहता है

ख. शराब का नशा ........................ ४ घंटे तक रहता है

ग. भांग का नशा........................२४ घंटे तक रहता है

घ. अफीम का नशा ........................२४ घटे तक रहता है

ङ. गाजा सुल्फा का नशा .................. १ घटे तक रहता है

हां, चंडू का भी बाप "कुचले के चावल" का नशा है। साधारणतया साप काटने के बाद जो आदमी बच जाता है वही कुचले के चावल का नशा कर सकता है। राजस्थान मे तो कठिनाई से दस बीस आदमी ही यह नशा करने वाले मिलेंगे किन्तु उत्तर प्रदेश और बंगाल मे इस नशे के करने वाले अधिक सख्या मे मिलते हैं।

४ चंडूबाज पानी से बहुत अधिक डरता है। पानी की बूंद उसे कुत्ते की तरह काटती है। इसका कारण यह है कि स्नान करने से चंडू की पिनक उतर जाती है। यही कारण है कि वर्षों तक चंडूबाज स्नान नही करता। उसका शरीर मैल और नशे के विष से काला स्याह हो जाता है और वह एक प्रकार का भूत सा लगने लगता है।

५. चंडूखाने और मदकखाने के मञ्चालक अधिकतर मुसलमान होते है। ये लोग भोले भाले बच्चो को भी अपने जालमे समय समय पर फसाते रहते हैं। एक बार संगत लगने के बाद उसका कीट नही छूटता और वह वेश्याओ के भी जाने लगता है। बाल ने गम्भीरतापूर्वक कहा—

"सङ्गत सार अनेक फल"

और मैंने भी तब महाकवि की ये पंक्तिया बोलदी

मुनि आचरन करि जाने कोई
सत संगत महिमा नही कोई

संगत ही गुण उपजे,
संगत ही गुन आये।

६. चंडू का नशा करने वाला मारपीट नही करता और नङ्गा रहना पसन्द करता है। भीख मांगना, चोरी करना, वेश्यागमन करना उसके अन्य दुर्गुण हैं।

७. चंडू पीने वाले के कोई भयङ्कर रोग नही होता। किन्तु नशा छोडने पर वह जीवन भर के लिए बेकार हो जाता है। उसके शरीर की नसें फडकने लगती हैं।

८. चंडू में औषधिजन्य गुण भी हैं। चाहे कितनी भी पुरानी, दस बीस वर्ष की खांसी हो, चने के दाने के बराबर चंडू के कीट की एक माशा मात्रा शहद मे मिलाकर रातको चाटने से खामी कुछ ही दिनो मे भाग जाती है। रातको बीमार को खूब प्यास लगती है, उसका जी मिचलाने किचकिचाने लगता है किन्तु उसको पानी नही पीना चाहिए। उसे नीद नही आयेगी, चौथे दिन फिर एक कंकरी शहद से चाटले। अधिक से अधिक एक महिने तक प्रति चौथे दिन यह दवा लेने से खासी जाती रहती है और फिर जीवन भर नही होती।

मेरा अन्तिम प्रश्न था, "बालजी, समाज कल्याण विभाग ने अब तक क्या किया है ?" उसने तुरन्त ही उत्तर दिया, "कुछ नहीं। मैं नही कह सकता कि समाज कल्याण विभाग को इन मदकखानो और चडूखानो का पता भी हैं या नही।"

बाल तो अपनी बात कह कर चला गया किन्तु मैं यही सोचता रहा, "समाज कल्याण विभाग की आखे अब तक क्यो नही खुली है ? किसी और आदमी या संस्था की न तो शक्ति ही है और सम्भवतः न वांछनीय ही है कि वह चंडूखानो, शराबखानो, वेश्यालयो आदि आदि का तथ्यपूर्ण अनुसंधान करे। सभ्य समाज के नागरिक इस नारकी वर्ग की ओर देख भी नही सकते हैं, इससे मिलना मात्र कितने बड़े खतरे की बात है।"

# ६० लाख गज की दूरी

६० वर्ष की उम्रमे उसके वाल सफेद होगये, शरीर पर झुर्रियां पड गई, पर वेगम नानी का मन सफेद नही हुआ, वह जीवन से हारी हुई, ठगी हुई और सताई हुई, अवश्य थी, पर आशा की एक किरण मन मे दवाये वोल उठी, "और देखोजी भाई साहव, यह नसरीन वडी दुखी है। इसका वाप इसका कालेज छुडाना चाहता है और यह आगे पढना चाहती है। वात इतनी वढ गई है, जितनी दुश्मनो मे आपस मे वढ जाती है।" और कुछ देर ठहर कर, एक लम्बी सास लेकर, वेगम ने कहा, "और सुनो तो, भाई साहव, इसके वाप ने मुझे दम दे देकर ६० हजार रुपये वर्षो पहले मुझसे ले लिये। मुझे एक कौडी भी नही परखी। आज मेरी यह हालत करदी कि मैं दाने २ को मोहताज होगई हूं।" वेगम रुकी नही और कहती ही गई, "हा एक वात और सुनो, भाईजान। देखो तो, तुम हमारे सगे भाई ही हो। हमारे तुम्हारे वीच कोई फर्क नही है। तुम्हारी छाया के नीचे हमको अव अच्छे दिन देखने को मिल जायेंगे। हम तुम्हारे गुण नही भूलेंगे। तुम तो जन्नत के फरिश्ते हो, फरिश्ते। हमारे भाग्य खुल गये कि खुदा ने हमको तुमसे मिला दिया।" वेगम ने फिर एक लम्बी सास ली और कहना चालू किया, "सुनो तो, भाईजी, इस नसरीन की, इस यासमीन की, इस परवेज की पढाई का इन्तजाम करदो। यह नसरीन अपने वाप की वात नही मानेगी। यह हरगिज शादी नही करेगी। देखो तो, यह आख की और दिल की वडी सच्ची लडकी है। क्या मजाल की यह इधर उधर देख तो ले। किन्तु मनसूवो की वडी पक्की। अपनी वात से हरगिज नही टल सकती। और देखो तो, कालेज मे सव मास्टरनियां इसकी तारीफ करती है, कहती हैं, नसरीन सर्दी आगई, अगर चेस्टर नही

है तो हम सिलवादें, लडकियां कहती है, हमारे नाश्ते मे से तुम भी नाश्ता खालो। किन्तु नाककी ऐसी पक्की है यह नसरीन, कि कालेज मे लड़कियो को नाश्ता करते देखकर यह इधर उधर पेड़ के नीचे दुबक जाती है और अपनी गरीबी को लोगो की आख बचाकर छुपा लेती है।" किन्तु बेगम रुकी नही, आंखो मे आंसू डबडबाकर बोली, "और देखो तो, भाईजान, हमको कुछ काम बतादो। रोटीके दो टुकड़े हमको मिल जायें। मेरी जैसी कितनी ही बहिनें आज बेबसी मे सिसकी पडी हैं। तुम्हारे हाथ मे तो बडी करामात है। तुम इस नसरीन को कुछ सिखादो, टाइप ही सिखादो, शार्टहैंड ही सिखादो। किसी दिन यह इल्म इसके काम आयेगा।" बेगम ने फिर कहा, "उन दिनो की याद आती है तो दिल मसोस कर रह जाती हू। क्या कहू, मेरे खाविन्द तो ताजीमी सरदार थे सरदार। मेरे घरमें रौनक बरसती थी। कभी इधर, कभी उधर, मैं जब हुकुमत और दौलत के मवारेमे आती थी तो मेरे मिजाज नही समाते थे। किन्तु, हाय अब, अब तो किस्मत फूट गई। दो रोटी के टुकड़े भी नसीब नही हैं। भाई साहब, लाओ मैं तुम्हारी दवाई ही कूट दिया करू। इसीसे मुझे चार पैसे दे देना।"

और एक दिन बातो ही बातो मे बेगम ने पूछ ही लिया, "भाईजान, एक बात बताओ, तुम कितने पढ़े हो?"

और यह सुनकर कि "तुम कितने पढे हो," भाई साहब का माथा ठनक गया। क्या जवाब दें भाई साहब? थोड़ी देर सोच विचार कर भाई साहब कैाम से बोले, "नानी, तू तो बावली होगई। अरे मैं तो चार जमात भी पढा हुआ नही हू। और यह देख, समन्दर मे एक बूंद के बराबर, रेगिस्तान की मिट्टी के एक धूलि–कण के बराबर भी मैं नही पढा हूं। मैं तो तेरी तरह ही बिना पढा लिखा आदमी हूं।" भाई साहब ने रुककर कहा, "और देख नानी, मैं सोचता हूं कि अब आधी उम्र बीतने के बाद थोडा सा पढ भी लूं। अब मैं किसी पाठशाला मे भर्ती होकर

जिन्दगी की बारहखडी सीखना चाहता हू ।" भाई साहब की बात सुनकर नानी आखे फाडने लगी । वह ना समझ नही थी, किन्तु समझने के चक्कर मे वह कभी ज्यादा समझ जाती थी और कभी कम । पर जब यह बात आई गई होगई तो बोली, "आओगे न, मेरे घर आओगे न । और देखो जी, नसरीन से भी वही बात कर लेना । उसको हिम्मत बधा देना । उसका बाप बड़ा जाहिल है । उसके दो सौतेले भाई उसको बहुत तग करते हैं । पर अब तुम्हारा सहारा मिल जायेगा तो बेड़ा पार होजायेगा । या खुदा, या इलाही, अल्लाओ अकबर," और इतना कहते कहते सैकड़ो दुआओ की बौछार करते २ नानी अपने घरकी ओर चलदी ।

इसी तरह चन्द दिन गुजर गये कि एक शामको एक छोटी सी १२ वर्षकी लडकी आई और बोली, "भाई साहब, चलिए । आजाइये, मेरे पीछे २ ।" भाई साहब ने कहा, "अच्छा चल । पर देख, तू बीस कदम आगे आगे चलना, मै पीछे पीछे ।" और बीस कदम के फासले मे सदियो की परम्पराओ के फासले छिपे पडे थे । भाई साहब धर्म, समाज, रूढियाँ, कट्टरता और दकियानूसियत की उन दीवारो को लाधकर जारहे थे, जो समाज के कुनबो मे अधकार ही अंधकार फैलाये हुये थी । उन बीस गज के फासले के बीच भाई साहब ने देखा, "और यह तंग चक्करदार गली मकान का पिछला हिस्सा, चोरी २ से जाने का एक रास्ता, रात की अंधियारी, आजाइये, चले आइये, धीरे धीरे चुपचाप डरी सी आवाज, और यह टूटे फूटे मकान की दीवार, एक कोठरी पार हुई, दूसरी आई, चक्कर मे चक्कर, भूलभुल्लैया मे भूलभुल्लैया, छिपते २ किन्तु अन्त मे एक छोटा सा कमरा, कुछ प्रयत्न करके साफ किया हुआ, एक ओर रजत वर्क लगे दो पान, कुछ मिठाई, दूसरी ओर चमकती हुई राखी, तीसरी ओर एक हारमोनियम, चौथी ओर बेगम नानी, पाचवी ओर छोटी लड़की और छठी ओर .......................... ।"

और बीस गज के फासले मे भाई साहब ने देखा, "छठी और वह रूप लावण्य की नव जवान सरिता, कालेज की लडकी, नसरीन, हा, हां,

नसरीन, यथा नाम तथा रूप, सामने कैरोसीन की मन्द रोशनी मे, दो चमकते हुये हीरे झिलमिला कर जैसे सावधान हो गये, नमस्ते हुई, मिजाज पोशी हुई और बातें हुई।" भाई साहव बोले, "तुम्ही नसरीन हो। तुम मेरे घर जब आई थी तो बुरके मे आई थी। मुझे तुम्हारी सूरत याद नही रह सकी।" और वह बोली, "हां, मैंने उस समय चश्मा जो लगा रखा था।" नसरीन ने बात बिल्कुल पते की कही। बीस गज का फासला और चश्मा! फिर चश्मे का भी तो अन्तर होता है। एक चश्मे मे परदा देखता है, गुलामी देखता है, मजबूरी देखता है और दूसरा चश्मे मे आजादी देखता है, बेपर्दगी देखता है और हरिण के बच्चो को चौकडियां भरते हुये देखता है। बात यह थी कि भाई साहब के देखने का चश्मा कुछ और था, नसरीन के बाप का कुछ और, नानी का कुछ और, और स्वय नसरीन का कुछ और! पर नसरीन के चेहरे पर एक साथ सबका चश्मा लगा हुआ था। बाप के घर मे जब वह जाती तो बुरका पहन लेती, घर से बाहर निकलती तो बुरका पहन लेती, कही कोई हाथ की उंगलियो और पैर के नाखूनो को देख न ले, किन्तु शहर का दरवाजा पार हुआ कि परदा भी पार हुआ। बुरका खिसक जाता गर्दन पर और वह शहर की चहल पहल को रौनक भरी निगाहो से देखने जो लगती! और कालेज मे तो बुरके का सवाल ही नही। वहा तो २० वी शताब्दी का चश्मा लगाना ही पडता, फिर वापिसी मे वही क्रम। किन्तु नानी बेगम के चश्मे के नम्बर बहुत कुछ नसरीन के मन के चश्मे से मिलते जुलते थे। वह बीच २ मे कह उठती, "अजी भाई साहब, देखो तो, फिकर मत करो। यह पर्दा तो साल दो साल का है। यह नसरीन इस घूंघट मे रहने वाली लडकी नही है। पर आज ही यह हम कैसे हटायें। बिरादरी मे कुहराम मच जायेगा। पहले इसे थोडा और पढ लेने दो, फिर यह खुद ही आपके मन के मुताबिक पर्दा हटा देगी।" और भाई साहब भी चुपचाप सुनते रहते।

—

किन्तु बीच में ही फिर नानी बोल उठी "और भाई साहब, देखोजी, वह नसरीन ने पान बनाये है। एक पान तो खाओ। और देखो तो कुछ मिठाई भी। और सुनो तो, एक दिन हमारी सूखी रोटी भी," और इस तरह भाई साहब की मनवार कराती २ नानी ने कहा, 'देखो तो, यह नसरीन तुम्हारी बहिन ही है। मैंने सुना है कि हिन्दुओ मे बहिन भाई के हाथ मे राखी बाध देती है तो फिर अकलाक का रिश्ता पक्का हो जाता है। फिर किसी बात का डर नही रहता है। यह बात सही है तो तुम भी तुम्हारी बहिन के हाथ से राखी बधवा लो भाई साहब।"

भाई साहब बेगम की बात सुन कर मन मे सिटपिटा गये। अभी तक उनके दिमाग मे २० गज की दूरी, पर्दा हटाने की, नसरीन को कालेज मे पढाने की, उसको समाज के दकियानूसी बधनो से मुक्त कराने की बात ही थी। किन्तु अब, अब तो जैसे भाई साहब को ही बधन मे, राखी के बंधन मे, भाई बहिन के बंधन मे बाधने की कोशिशे की जारही हैं। जैसे सब कुछ, ऊपरसे नीचे तक, दायें से बायें तक, जौहरी की तरह परखने के बाद भी बेगम नानी को यकीन न आरहा हो और वह राखी के धागे की छत्रछाया मे जैसे नसरीन को सौंप कर कुछ निश्चित हो जाना चाहती हो। किन्तु बात शायद इतनी सी नही थी। नानी ने जमाना देखा था, ठगी का जमाना, स्वयं के ठगे जाने का जमाना, अच्छा जमाना और बुरा जमाना, लोगो के दिलो का जमाना, पता नही कोई अफसाना देखा था या नही और इसीलिये उसे जैसे कुछ यकीन नही हो रहा था, भाई साहब का सवाल नही, सवाल तो समाज की बत्तीनियत का था, और भाई साहब भी तो उनमे से ही एक जो था। उसने जमाने की कुर्वानियो मे धोखा और फरेब देखा, झूठ और माया देखी और शायद फूंक २ कर कदम उठाना चाहती है और भाई साहब को राखी के धागे मे बाध कर नसरीन को सौंप देना चाहती है।

किन्तु भाई साहब ने जमाना नही देखा था। वह अभी जवान उम्र

के, आँखों मे रोशनी लिये हुये थे। वह समझ ही नही सके कि बेगम नानी को क्या जवाब दें। और देखो, मन के उद्‌गार मन के अन्दर छिपे रहे, किन्तु भाई साहब का हाथ राखी बंधाने के लिये आगे नही बढा। राखी धरी की धरी रह गई और शायद बेगम नानी और नसरीन भी सोचती की सोचती रह गई।

किन्तु इसी बीच फिर एक बार बीस गज का फासला भाई साहब की निगाह के सामने आ गया और वह सोचने लगे, "यह देखो, वह चली पासमीन बीस गज दूर, ... .. नही...... नही ... . बीस गज दूर नही, २० हजार गज दूर, ... नही... ... नही ...... बीस लाख गज दूर,... जमाने से दूर, और यह देखो, वह नसरीन भी, शहर का दर्वाजा निकलते ही बीस गज की दूरी शून्य मे बदलती हुई ......... मुहल्ले की गली और घर की चार दीवार के अन्दर... .. फिर वही २० लाख गज की दूरी ...... जमाना बदल गया, पर नसरीन का मोहल्ला नही बदला, नसरीन बदल गई, पर नसरीन की हिम्मत नही बदली, नसरीन की हिम्मत भी बदल गई पर समाज की नाक पर बुरके की विद्या नही बदली।" और इसी उधेडबुन मे भाई साहब सोचते ही रह गये कि हाथ आगे बढावे या नही, कही कोई देख न ले, यह न कह दे कि बुरके वाली नसरीन ने एक हिन्दू के हाथ मे राखी पहना दी, वह हिन्दू बन गई, वह राखी के आवरण मे भाई साहब मे रम गई या भाई साहब नसरीन मे रम गये।

और जब अर्द्ध रात्रि बीतने मे कुछ पहर शेष रह गये तो भाई साहब ने कहा, "अरे, कालेज से आने के बाद तुमने कुछ नही खाया, बडा गजब हो गया कि मैंने तुमको भूखो मार दिया, पहली ही मुलाकात मे भूखो मार दिया। लो मैं चला।" और भाई साहब फिर उसी चक्करदार भूलभुलैया की दीवारो मे, पासमीन के पीछे २ चल दिये आजाद दुनिया की सैर करने को। वह अपने घर आये भी नही थे, कि उनके दिमाग मे जैसे चक्कर आने लगा, "और वह मासूम करुणाजल भरी

आंखें, वह सुन्दर सलोना सरिता के समान हिलोरे भरता हुआ चेहरा, वह तहजीब और वह कमसीन अदायें, किन्तु वह क्लेष, रोग और शोक से भरी, २० लाख गज की दूरी से भी साफ साफ दिखने वाली भोली भाली सूरत पर रोमांच समाज के हृदय पर एक भयंकर कलंक बना कुछ कह ही रहा था कि भाई साहब ने कलम उठाई और लिख दिया "नसरीन, कल मैं खाली हाथ गया था। भाई खाली हाथ राखी नही बंधवाते। उस राखी को संभाल कर रख देना। उसमे मेरा मन बस गया है ...... किसी दिन........।" किन्तु भाई साहब का यह बहाना था। उनका मन राखी मे नही रमा था, उनका मन तो २० लाख गज की दूरी से कुछ देखने मे लगा हुआ था।

# बी. एल. अजमेरा द्वारा लिखित पुस्तकें

१. भारतीय आर्थिक लेख
( राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत )
२. भारत के आर्थिक लेख
३. नवीन आर्थिक लेख
४. गोवध का आर्थिक पहलू
५. सचित्र हिन्दी टाइपराइटिंग भाग १
६. सचित्र हिन्दी टाइपराइटिंग भाग २
७. भारतीय औद्योगिक नीति
८. भारत की खाद्य समस्या
९. पिछड़ी बस्तियों में बीमारों का सर्वेक्षण
१०. जयपुर में भिखारी सर्वेक्षण
११. टी. बी. के बीमारों का सर्वेक्षण ( टी. बी. सेनेटोरियम, जयपुर)
१२. What Revolution in Education ?
१३. विराट के दर्शन
१४. भारतीय रेल यातायात
१५. चेतना की मशाल
( राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित एवं पारिश्रमिक प्रदत्त )
१६. नवीन क्रान्ति
( राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित एवं पारिश्रमिक प्रदत्त )
१७. दर्शन ( लगभग दो हजार छन्दों का काव्य-ग्रन्थ-अप्रकाशित)
१८. अनन्त लोक में ( लगभग एक हजार छन्दों का काव्य ग्रन्थ)
अप्रकाशित
१९. समता ( अप्रकाशित )
२०. कलिका ( अप्रकाशित )
२१. Kindred Lights ( Unpublished )
२२. जीवन के ये मूल्य ( अप्रकाशित )
२३. वर्तमान शिक्षा पद्धति ( अप्रकाशित )